Chapter तेरह

ब्रह्मा द्वारा बालकों तथा बछड़ों की चोरी

इस अध्याय में ब्रह्माजी द्वारा ग्वालबालों तथा बछड़ों को चुराने के प्रयास के वर्णन के साथ ही ब्रह्माजी के मोहित होने तथा मोह के हटने का वर्णन हुआ है।

यद्यपि अघासुर सम्बन्धी घटना एक वर्ष पूर्व घट चुकी थी जब ग्वालबाल पाँच वर्ष के थे किन्तु जब वे छह वर्ष के हुए तो उन्होंने कहा, ''यह घटना तो आज घटी है।'' जो हुआ था वह इस प्रकार है। अघासुर को मारने के बाद कृष्ण तथा उनके संगी जंगल में विहार करने चले गये। बछड़े हरी घास से आकृष्ट होकर चरते-चरते जब दूर चले गये तो कृष्ण के संगी कुछ-कुछ क्षुब्ध हुए और उन्होंने अपने बछड़ों को वापस लाना चाहा। किन्तु कृष्ण ने ग्वालबालों को यह कह कर प्रोत्साहित किया, ''तुम क्षुब्ध हुए बिना अपना भोजन करो। बछड़ों को ढूँढ़ने मैं जाऊँगा।'' इस तरह कृष्ण वहाँ से चले गये। तब कृष्ण की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए ही ब्रह्माजी सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा ले गये और ले जाकर उन्हें एकान्त स्थान में रख दिया।

जब कृष्ण बछड़ों तथा बालकों को न ढूँढ़ पाये तो वे समझ गये कि यह ब्रह्मा की चाल है। फिर समस्त कारणों के कारण भगवान् ने ब्रह्माजी को तथा अपने संगियों और उनकी माताओं को प्रसन्न करने के लिए अपना विस्तार किया जिससे वे पूर्ववत् बछड़े तथा बालक बन जाँय। इस तरह उन्होंने

अन्य लीला खोज निकाली। इस लीला की विशेषता यह थी कि ग्वालबालों की माताएँ अपने अपने पुत्रों से और अधिक अनुरक्त हो गईं और गाएँ अपने बछड़ों से। लगभग एक वर्ष बाद बलदेव ने देखा कि सारे ग्वालबाल तथा सारे बछड़े कृष्ण के विस्तार हैं तब उन्होंने कृष्ण से पूछा और उन्होंने जो कुछ हुआ था बतला दिया।

पूरा एक वर्ष बीतने पर जब ब्रह्मा लौटे तो देखा कि कृष्ण पूर्ववत् अपने मित्रों, अपनी गौओं तथा बछड़ों के साथ खेल रहे थे। कृष्ण ने सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को नारायण के चतुर्भज रूप में प्रदर्शित किया। तब जाकर ब्रह्मा को कृष्ण की शक्ति का पता लग सका और वे अपने आराध्यदेव कृष्ण की लीलाओं पर आश्चर्यचकित रह गये। किन्तु कृष्ण ने ब्रह्मा को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की और उन्हें मोह से मुक्त किया। इस तरह ब्रह्माजी भगवान् का गुणगान करने के लिए स्तुति करने लगे।

श्रीशुक उवाच
साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; साधु पृष्टम्—आपके प्रश्न से मैं सम्मानित हुआ हूँ; महा-भाग—परम भाग्यशाली व्यक्ति; त्वया—तुम्हारे द्वारा; भागवत-उत्तम—हे सर्वश्रेष्ठ भक्त; यत्—क्योंकि; नूतनयसि—तुम नया से नया कर रहे हो; ईशस्य—भगवान् के; शृण्वन् अपि—निरन्तर सुनते हुए भी; कथाम्—लीलाओं को; मुहुः—बारम्बार।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे भक्त शिरोमणि, परम भाग्यशाली परीक्षित, तुमने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है क्योंकि भगवान् की लीलाओं को निरन्तर सुनने पर भी तुम उनके कार्यों को नित्य नूतन रूप में अनुभव कर रहे हो।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत में प्रौढ़ हुए बिना भगवान् की लीलाओं का निरन्तर श्रवण कर पाना कठिन है। *नित्यं नवनवायमानम्*—यद्यपि अग्रगण्य भक्त भगवान् के विषय में वर्षों तक निरन्तर श्रवण करते हैं किन्तु तो भी उन्हें ये कथाएँ नित्य नूतन लगती हैं। अतएव ऐसे भक्त भगवान् कृष्ण की लीलाओं का श्रवण करना त्याग नहीं सकते। *प्रमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति। सन्तः* शब्द उस व्यक्ति के लिए आया है, जिसमें कृष्ण-प्रेम उत्पन्न हो चुका है। *यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि* (ब्रह्म-संहिता ५.३८)। इसीलिए परीक्षित महाराज को *भागवतोत्तम* कह कर सम्बोधित किया गया है क्योंकि भक्ति में अग्रसर हुए बिना

अधिकाधिक श्रवण करने का आनन्द अनुभव नहीं हो सकता और कथाएँ नित्य नूतन नहीं लग सकतीं।

सतामयं सारभृतां निसर्गो
यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्
स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २॥

शब्दार्थ

सताम्—भक्तों का; अयम्—यह; सार-भृताम्—परमहंसों का, जिन्होंने जीवन सार स्वीकार किया है; निसर्ग:—लक्षण या गुण; यत्—जो; अर्थ-वाणी—जीवन का लक्ष्य, लाभ का लक्ष्य; श्रुति—समझने का उद्देश्य; चेतसाम् अपि—जिन्होंने दिव्य विषयों के आनन्द को ही जीवन लक्ष्य स्वीकार कर रखा है; प्रति-क्षणम्—हर क्षण; नव्य-वत्—मानो नवीन से नवीनतर हो; अच्युतस्य—भगवान् कृष्ण का; यत्—क्योंकि; स्त्रिया:—स्त्रियों या यौन की (कथाएँ); विटानाम्—स्त्रियों से अनुरक्तों या लम्पटों के; इव—सदृश; साधु वार्ता—वास्तविक वार्तालाप।

जीवन-सार को स्वीकार करने वाले परमहंस भक्त अपने अन्त:करण से कृष्ण के प्रति अनुरक्त होते हैं और कृष्ण ही उनके जीवन के लक्ष्य रहते हैं। प्रतिक्षण कृष्ण की ही चर्चा करना उनका स्वभाव होता है, मानो ये कथाएँ नित्य नूतन हों। वे इन कथाओं के प्रति उसी तरह अनुरक्त रहते हैं जिस तरह भौतिकतावादी लोग स्त्रियों तथा विषय-वासना की चर्चाओं में रस लेते हैं।

तात्पर्य : *सारभृताम्* का अर्थ है ''परमहंस।'' ''हंस'' दूध तथा पानी के मिश्रण में से दूध ग्रहण कर लेता है और जल को अस्वीकार कर देता है। इसी तरह जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन तथा कृष्णभावनामृत स्वीकार कर लेते हैं और कृष्ण को ही हर एक के प्राणाधार समझते हैं, वे स्वभावत: क्षण-भर के लिए भी *कृष्ण-कथा* का परित्याग नहीं कर सकते। ऐसे परमहंस सदैव अपने अन्त:करण में कृष्णदर्शन करते हैं (*सन्त: सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*)। काम, क्रोध तथा भय इस जगत में तो सदैव बने रहते हैं किन्तु आध्यात्मिक जगत में इनका उपयोग कृष्ण के लिए ही किया जाता है। *कामं कृष्णकर्मार्पणे।* अतएव परमहंसों की यही अभिलाषा रहती है कि वे सदैव कृष्ण के लिए कर्म करें। *क्रोधं भक्तद्वेषि जने।* वे क्रोध का उपयोग अभक्तों के विरुद्ध करते हैं और भय को कृष्णभावनामृत से विचलित होने के भय में रूपान्तरित करते हैं। इस तरह परमहंस-भक्त का जीवन पूर्णतया कृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है, जिस तरह भौतिक जगत में लिप्त व्यक्ति का जीवन एकमात्र स्त्रियों तथा धन के लिए होता है। भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए जो दिन है, वही अध्यात्मवादी के लिए रात है। भौतिकतावादी के लिए जो मधुर है—स्त्रियाँ तथा धन—वही अध्यात्मवादी के द्वारा विष माना जाता है।

सन्दर्शनं विषयिनामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु।

यह श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश है। परमहंस के लिए कृष्ण ही सर्वस्व हैं किन्तु भौतिकतावादी के लिए स्त्रियाँ तथा धन ही सब कुछ हैं।

श्रृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ।
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्रृणुस्व—कृपया सुनें; अवहितः—ध्यानपूर्वक; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); अपि—यद्यपि; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय (क्योंकि सामान्य व्यक्ति कृष्ण-लीलाओं को नहीं समझ सकते); वदामि—मैं कहूँगा; ते—तुमसे; ब्रूयुः—बताते हैं; स्निग्धस्य—विनीत; शिष्यस्य—शिष्य के; गुरवः—गुरुजन; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय; अपि उत—ऐसा होने पर भी।

हे राजन्, मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनें। यद्यपि भगवान् की लीलाएँ अत्यन्त गुह्य हैं और सामान्य व्यक्ति उन्हें नहीं समझ सकता किन्तु मैं तुमसे उनके विषय में कहूँगा क्योंकि गुरुजन विनीत शिष्य को गुह्य से गुह्य तथा कठिन से कठिन विषयों को भी बता देते हैं।

तथाघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ।
सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

तथा—तत्पश्चात्; अघ-वदनात्—अघासुर के मुख से; मृत्योः—साक्षात् मृत्यु; रक्षित्वा—रक्षा करके; वत्स-पालकान्—सारे ग्वालबालों तथा बछड़ों को; सरित्-पुलिनम्—नदी के तट पर; आनीय—लाकर; भगवान्—भगवान् कृष्ण ने; इदम्—ये शब्द; अब्रवीत्—कहे।

मृत्यु रूप अघासुर के मुख से बालकों तथा बछड़ों को बचाने के बाद भगवान् कृष्ण उन सब को नदी के तट पर ले आये और उनसे निम्नलिखित शब्द कहे।

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः
स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छबालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-
ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अति-रम्यम्—अतीव सुन्दर; पुलिनम्—नदी का किनारा; वयस्याः—मेरे मित्रो; स्व-केलि-सम्पत्—खेलने की सामग्री से युक्त; मृदुल-अच्छ-बालुकम्—मुलायम तथा साफ बालूदार किनारा; स्फुटत्—खिला हुआ; सरः-गन्ध—कमल की गंध से; हृत—आकृष्ट; अलि—भौंरें का; पत्रिक—तथा पक्षियों की; ध्वनि-प्रतिध्वान—उनकी चहचहाहट तथा उसकी प्रतिध्वनि; लसत्—गतिशील; द्रुम-आकुलम्—सुन्दर वृक्षों से पूर्ण।

मित्रो, देखो न, यह नदी का किनारा अपने मोहक वातावरण के कारण कितना रम्य लगता है! देखो न, खिले कमल किस तरह अपनी सुगन्ध से भौरों तथा पक्षियों को आकृष्ट कर रहे हैं। भौरों की गुनगुनाहट तथा पक्षियों की चहचहाहट जंगल के सभी सुन्दर वृक्षों से प्रतिध्वनित हो रही है। और यहाँ की बालू साफ तथा मुलायम है। अतः हमारे खेल तथा हमारी लीलाओं के लिए यह सर्वोत्तम स्थान है।

तात्पर्य : वृन्दावन के जंगल का यह वर्णन पाँच हजार वर्ष पूर्व कृष्ण द्वारा किया गया था और यही स्थिति ३००-४०० वर्ष पूर्व वैष्णव आचार्यों के समय तक बनी रही। *कूजत्कोकिलहंससारसगणाकीर्णे मयूराकुले।* वृन्दावन का जंगल सदैव कोकिल, हंस, सारस जैसे पक्षियों की चहक तथा कुहू-कुहू से पूरित रहता है और इसमें मोर भी रहते हैं (*मयूराकुले*)। आज भी वही ध्वनि तथा वातावरण उस क्षेत्र में विद्यमान हैं जहाँ हमारा कृष्ण-बलराम मन्दिर स्थित है। जो भी इस मन्दिर को देखने आता है, वह यहाँ पर वर्णित पक्षियों के कलरव को सुन कर प्रसन्न हो जाता है (*कूजत्कोकिल-हंससारस*)।

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः ।
वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अत्र—यहाँ, इस स्थान पर; भोक्तव्यम्—भोजन किया जाय; अस्माभिः—हम लोगों के द्वारा; दिव-आरूढम्—काफी देर हो चुकी है; क्षुधा अर्दिताः—भूख से थके; वत्साः—बछड़े; समीपे—पास ही; अपः—जल; पीत्वा—पीकर; चरन्तु—चरने दें; शनकैः—धीरे धीरे; तृणम्—घास।

मेरे विचार में हम यहाँ भोजन करें क्योंकि विलम्ब हो जाने से हम भूखे हो उठे हैं। यहाँ बछड़े पानी पी सकते हैं और धीरे धीरे इधर-उधर जाकर घास चर सकते हैं।

तथेति पाययित्वार्भा वत्सानारुध्य शाद्वले ।
मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तथा इति—कृष्ण के प्रस्ताव को ग्वालबालों ने स्वीकार कर लिया; पाययित्वा अर्भाः—पानी पीने दिया; वत्सान्—बछड़ों को; आरुध्य—वृक्षों में बाँध कर चरने दिया; शाद्वले—हरी मुलायम घास में; मुक्त्वा—खोल कर; शिक्यानि—पोटली, जिनमें खाने की तथा अन्य वस्तुएँ थीं; बुभुजुः—जाकर आनन्द मनाया; समम्—समान रूप से; भगवता—भगवान् के साथ; मुदा—दिव्य आनन्द में।

भगवान् कृष्ण के प्रस्ताव को मान कर ग्वालबालों ने बछड़ों को नदी में पानी पीने दिया

और फिर उन्हें वृक्षों से बाँध दिया जहाँ हरी मुलायम घास थी। तब बालकों ने अपने भोजन की पोटलियाँ खोलीं और दिव्य आनन्द से पूरित होकर कृष्ण के साथ खाने लगे।

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलै-
रभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य विष्वक्—कृष्ण को घेर कर; पुरु-राजि-मण्डलैः—संगियों के विभिन्न घेरों से; अभ्याननाः—बीचोबीच देखते हुए, जहाँ कृष्ण बैठे थे; फुल्ल-दृशः—दिव्य आनन्द से प्रफुल्लित चेहरे; व्रज-अर्भकाः—व्रजभूमि के सारे ग्वालबाल; सह-उपविष्टाः—कृष्ण के साथ बैठे हुए; विपिने—जंगल में; विरेजुः—सुन्दर ढंग से बनाये गये; छदाः—पंखड़ियाँ तथा पत्तियाँ; यथा—जिस प्रकार; अम्भोरुह—कमल के फूल की; कर्णिकायाः—कोश की।

जिस तरह पंखड़ियों तथा पत्तियों से घिरा हुआ कोई कमल-पुष्प कोश हो उसी तरह बीच में कृष्ण बैठे थे और उन्हें घेर कर पंक्तियों में उनके मित्र बैठे थे। वे सभी अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। उनमें से हर बालक यह सोच कर कृष्ण की ओर देखने का प्रयास कर रहा था कि शायद कृष्ण भी उसकी ओर देखें। इस तरह उन सबों ने जंगल में भोजन का आनन्द लिया।

तात्पर्य : जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है (*सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*) कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों को सदैव दिखते हैं। *भगवद्गीता* में भी कृष्ण ने इसी ओर संकेत किया है (*सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्*)। यदि पुण्यकर्मों को संचित करके (*कृतपुण्यपुञ्जाः*) कोई व्यक्ति शुद्ध भक्ति पा लेता है, तो उसके हृदय में कृष्ण सदैव दृष्टिगोचर होते हैं। जिसने ऐसी सिद्धि पा ली है, वह दिव्य आनन्द में परम सुन्दर बन जाता है। वर्तमान कृष्णभावनामृत आन्दोलन कृष्ण को केन्द्र में रखने का एक प्रयास है क्योंकि यदि ऐसा किया जाता है, तो सारे कार्य स्वयमेव सुन्दर तथा आनन्दमय बन जाते हैं।

केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

केचित्—कोई; पुष्पैः—फूलों पर; दलैः—फूलों की सुन्दर पत्तियों पर; केचित्—कोई; पल्लवैः—पत्तियों के गुच्छों पर; अङ्कुरैः—फूलों के अंकुरों पर; फलैः—तथा कोई फलों पर; शिग्भिः—कोई डलिया-से डिब्बे में; त्वग्भिः—पेड़ की छाल से; दृषद्भिः—चट्टानों पर; च—और; बुभुजुः—आनन्द मनाया; कृत-भाजनाः—खाने की प्लेटें बनाकर।

ग्वालबालों में से किसी ने अपना भोजन फूलों पर, किसी ने पत्तियों, फलों या पत्तों के गुच्छों पर, किसी ने वास्तव में ही अपनी डलिया में, तो किसी ने पेड़ की खाल पर तथा किसी ने

चट्टानों पर रख लिया। बालकों ने खाते समय इन्हें ही अपनी प्लेटें (थालियाँ) मान लिया।

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी ग्वालबाल; मिथः—परस्पर; दर्शयन्तः—दिखाते हुए; स्व-स्व-भोज्य-रुचिम् पृथक्—घर से लाये गये भोज्य पदार्थों की भिन्न भिन्न किस्में तथा उनके पृथक्-पृथक् स्वाद; हसन्तः—चखने के बाद सभी हँसते हुए; हासयन्तः च—तथा हँसाते हुए; अभ्यवजह्रुः—भोजन का आनन्द लिया; सह-ईश्वराः—कृष्ण के साथ।

अपने अपने घर से लाये गये भोजन की किस्मों के भिन्न भिन्न स्वादों को एक-दूसरे को बतलाते हुए सारे ग्वालों ने कृष्ण के साथ भोजन का आनन्द लिया। वे एक-दूसरे का भोजन चख-चख कर हँसने तथा हँसाने लगे।

तात्पर्य : कभी कोई मित्र कहता, ''कृष्ण! देखो मेरा भोजन कितना स्वादिष्ट है'' तो कृष्ण थोड़ा-सा ले लेते तथा हँसते। इसी प्रकार बलराम, सुदामा तथा अन्य मित्र एक-दूसरे का भोजन चख-चख कर हँसते। इस तरह सारे मित्र परम हर्षित होकर घर से लाया हुआ अपना अपना भोजन करने लगे।

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

बिभ्रत् वेणुम्—वंशी को रख कर; जठर-पटयोः—कसे हुए चुस्त वस्त्र तथा पेट के बीच; शृङ्ग-वेत्रे—सींग का बना बिगुल तथा गाय हाँकने की छड़ी; च—भी; कक्षे—कमर में; वामे—बाएँ; पाणौ—हाथ में लेकर; मसृण-कवलम्—चावल तथा दही से बना सुन्दर भोजन; तत्-फलानि—बेल जैसे फल; अङ्गुलीषु—अँगुलियों के बीच; तिष्ठन्—इस प्रकार रखी; मध्ये—बीच में; स्व-परि-सुहृदः—अपने निजी संगी; हासयन्—हँसाते हुए; नर्मभिः—हास्य; स्वैः—अपने; स्वर्गे लोके मिषति—स्वर्गलोक के निवासी इस अद्भुत दृश्य को देख रहे थे; बुभुजे—कृष्ण ने आनन्द लिया; यज्ञ-भुक् बाल-केलिः—यद्यपि वे यज्ञ की आहुति स्वीकार करते हैं किन्तु बाल-लीला हेतु वे अपने ग्वालबाल मित्रों के साथ बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक भोजन कर रहे थे।

कृष्ण यज्ञ-भुक् हैं—अर्थात् वे केवल यज्ञ की आहुतियाँ ही खाते हैं किन्तु अपनी बाल-लीलाएँ प्रदर्शित करने के लिए वे अपनी वंशी को अपनी कमर तथा दाहिनी ओर कसे वस्त्र के बीच तथा सींग के बिगुल और गाय चराने की लाठी को बाईं ओर खोंस कर बैठ गये। वे अपने हाथ में दही तथा चावल का बना सुन्दर व्यंजन लेकर और अपनी अँगुलियों के बीच में उपयुक्त फलों के टुकड़े पकड़कर इस तरह बैठे थे जैसे कमल का कोश हो। वे आगे की ओर अपने सभी मित्रों को देख रहे थे और खाते-खाते उनसे उपहास करते जाते थे जिससे सभी ठहाका

लगा रहे थे। उस समय स्वर्ग के निवासी देख रहे थे और आश्चर्यचकित थे कि किस तरह यज्ञ-भुक् भगवान् अब अपने मित्रों के साथ जंगल में बैठ कर खाना खा रहे हैं।

तात्पर्य : जब कृष्ण अपने मित्रों के साथ बैठ कर खाना खा रहे थे तो एक भौंरा उड़ कर खाने में हिस्सा बँटाने के लिए वहाँ आ गया। इस पर कृष्ण ने उपहास किया, ''तुम मेरे ब्राह्मण मित्र मधुमंगल को तंग करने क्यों आये हो? क्या उस ब्राह्मण को मारना चाहते हो? यह अच्छी बात नहीं।'' खाते समय ऐसे परिहासपूर्ण शब्द बोलने से सारे बालक हँस रहे थे और खूब आनन्द ले रहे थे। इस प्रकार स्वर्ग के निवासी चकित थे कि जो भगवान् केवल यज्ञ में अर्पित भोजन करते हैं, वे अब किस तरह सामान्य बालक की तरह अपने मित्रों के साथ जंगल में भोजन कर रहे हैं।

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिता: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भारत—हे महाराज परीक्षित; एवम्—इस प्रकार (भोजन करते हुए); वत्स-पेषु—बछड़े चराने वाले बालकों के साथ; भुञ्जानेषु—भोजन करने में व्यस्त; अच्युत-आत्मसु—अच्युत अर्थात् कृष्ण के अभिन्न होने से; वत्सा:—बछड़े; तु—फिर भी; अन्त:-वने—गहन जंगल के भीतर; दूरम्—काफी दूर; विविशु:—घुस गये; तृण-लोभिता:—हरी घास से लुब्ध होकर।

हे महाराज परीक्षित, एक ओर जहाँ अपने हृदय में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को न जानने वाले ग्वालबाल जंगल में भोजन करने में इस तरह व्यस्त थे वहीं दूसरी ओर बछड़े हरी घास से ललचाकर दूर घने जंगल में चरने निकल गये।

तान्दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तान्—उन दूर जा रहे बछड़ों को; दृष्ट्वा—देखकर; भय-सन्त्रस्तान्—उन ग्वालबालों को जो भय से क्षुब्ध थे कि गहन वन के भीतर बछड़ों पर कोई खूनी जानवर आक्रमण न कर दे; ऊचे—कृष्ण ने कहा; कृष्ण: अस्य भी-भयम्—कृष्ण, जो स्वयं सभी प्रकार के भय का भी भय हैं (कृष्ण के रहने पर कोई भय नहीं रहता); मित्राणि—हे मित्रो; आशात्—भोजन के आनन्द से; मा विरमत—मत रुको; इह—इस स्थान में; आनेष्ये—वापस लाये देता हूँ; वत्सकान्—बछड़ों को; अहम्—मैं।

जब कृष्ण ने देखा कि उनके ग्वालबाल मित्र डरे हुए हैं, तो भय के भी भीषण नियन्ता उन्होंने उनके भय को दूर करने के लिए कहा, ''मित्रो, खाना मत बन्द करो। मैं स्वयं जाकर तुम्हारे बछड़ों को इसी स्थान में वापस लाये दे रहा हूँ।''

तात्पर्य : कृष्ण की मैत्री होने पर भक्त को कोई भय नहीं रह जाता। कृष्ण परम नियन्ता हैं, यहाँ

तक कि वे मृत्यु के भी नियन्ता हैं, जो इस जगत के लिए परम भय है। *भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्* (भागवत ११.२.३७)। यह भय कृष्णभावनामृत के अभाव के कारण उदय होता है अन्यथा भय हो ही नहीं सकता। जिसने कृष्ण के चरणकमलों में शरण ले रखी है उसे इस भय-रूपी जगत में कुछ भी भयावह नहीं है।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्।

भवाम्बुधिः अर्थात् भय का भौतिक सागर परम नियन्ता की कृपा से आसानी से पार किया जा सकता है। इस भौतिक जगत में पग पग पर भय तथा विपदा है (*पदं पदं यद् विपदाम्*) किन्तु जो लोग भगवान् कृष्ण के चरणकमलों में शरणागत हैं उनके लिए ऐसा नहीं है। ऐसे व्यक्ति इस भयावह जगत से मुक्त कर दिये जाते हैं—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पंद पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

(*भागवत* १०.१४.५८)

अतएव हर व्यक्ति को चाहिए कि निर्भीकता के स्रोत भगवान् की शरण ग्रहण करे और इस तरह सुरक्षित हो ले।

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति उक्त्वा—यह कह कर (कि मुझे बछड़े लाने दो); अद्रि-दरी-कुञ्ज-गह्वरेषु—पर्वतों, पर्वत की गुफाओं, झाड़ियों तथा सँकरी जगहों में; आत्म-वत्सकान्—अपने मित्रों के बछड़ों को; विचिन्वन्—ढूँढ़ते हुए; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; स-पाणि-कवलः—दही तथा चावल अपने हाथ में लिए; ययौ—चल पड़े।

कृष्ण ने कहा, ''मुझे जाकर बछड़े ढूँढ़ने दो। अपने आनन्द में खलल मत डालो।'' फिर हाथ में दही तथा चावल लिए, भगवान् कृष्ण तुरन्त ही अपने मित्रों के बछड़ों को खोजने चल पड़े। वे अपने मित्रों को तुष्ट करने के लिए सारे पर्वतों, गुफाओं, झाड़ियों तथा सँकरे मार्गों में

खोजने लगे।

तात्पर्य : वेद (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८) बलपूर्वक कहते हैं कि भगवान् को अपने लिए कुछ भी नहीं करना होता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*) क्योंकि वे अपनी शक्तियों के द्वारा हर कार्य करते रहते हैं (*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*)। फिर भी हम यहाँ देखते हैं कि वे अपने मित्रों के बछड़ों को ढूँढ़ने स्वयं जाते हैं। यह कृष्ण की अहैतुकी कृपा है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—सारे जगत और समस्त ब्रह्माण्ड के जितने भी कार्य हैं, वे उन्हीं के निर्देशन में उन्हीं की विभिन्न शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। तो भी जब अपने मित्रों की रखवाली करने की आवश्यकता होती है वे उसे स्वयं करते हैं। कृष्ण ने अपने मित्रों को आश्वासन दिया, ''डरो नहीं, मैं स्वयं तुम लोगों के बछड़ों को ढूँढ़ने जा रहा हूँ।'' यह कृष्ण की अहैतुकी कृपा थी।

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितु-
र्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा
दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अम्भोजन्म-जनिः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी; तत्-अन्तर-गतः—ग्वालबालों के साथ भोजन कर रहे कृष्ण के कार्यों में फँस गये; माया-अर्भकस्य—कृष्ण की माया से बनाए गये बालकों के; ईशितुः—परम नियन्ता का; द्रष्टुम्—दर्शन करने के लिए; मञ्जु—अत्यन्त रोचक; महित्वम् अन्यत् अपि—भगवान् की अन्य महिमाओं को भी; तत्-वत्सान्—उनके बछड़ों को; इतः—जहाँ थे उसकी अपेक्षा; वत्स-पान्—तथा बछड़ों की रखवाली करने वाले ग्वालबालों को; नीत्वा—लाकर; अन्यत्र—दूसरे स्थान पर; कुरूद्वह—हे महाराज परीक्षित; अन्तर-दधात्—छिपा दिया; खे अवस्थितः यः—यह पुरुष ब्रह्मा, जो आकाश में स्वर्गलोक में स्थित था; पुरा—प्राचीनकाल में; दृष्ट्वा—देख कर; अघासुर-मोक्षणम्—अघासुर के अद्भुत वध तथा उद्धार को; प्रभवतः—सर्वशक्तिमान परम पुरुष का; प्राप्तः परम् विस्मयम्—अत्यन्त विस्मित था।

हे महाराज परीक्षित, स्वर्गलोक में वास करने वाले ब्रह्मा ने अघासुर के वध करने तथा मोक्ष देने के लिए सर्वशक्तिमान कृष्ण के कार्यकलापों को देखा था और वे अत्यधिक चकित थे। अब वही ब्रह्मा कुछ अपनी शक्ति दिखाना और उस कृष्ण की शक्ति देखना चाह रहे थे, जो मानो सामान्य ग्वालबालों के साथ खेलते हुए अपनी बाल-लीलाएँ कर रहे थे। इसलिए कृष्ण की अनुपस्थिति में ब्रह्मा सारे बालकों तथा बछड़ों को किसी दूसरे स्थान पर लेकर चले गये। इस तरह वे फँस गये क्योंकि निकट भविष्य में वे देखेंगे कि कृष्ण कितने शक्तिशाली हैं।

तात्पर्य : जब कृष्ण अघासुर का वध कर रहे थे तो वे अपने मित्रों के साथ थे। ब्रह्मा अघासुर का

वध देख कर चकित थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि कृष्ण भोजन-लीला में मस्त हैं, तो वे और भी चकित हो उठे अत: उन्होंने परीक्षा लेनी चाही कि कृष्ण वहाँ वास्तव में हैं कि नहीं। इस तरह वे कृष्ण की माया में फँस गये। कुछ भी हो ब्रह्मा का जन्म भौतिक रूप से हुआ था—जैसा यहाँ वर्णित है *अम्भोजन्मजनि:—अम्भोज* अर्थात् वे कमल से जन्मे थे। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वे कमल से उत्पन्न हुए थे, किसी मनुष्य, पशु या भौतिक पिता से नहीं। कमल भी भौतिक होता है और जो भी भौतिक शक्ति के माध्यम से उत्पन्न होता है उसमें चार भौतिक दोष होंगे—भ्रम (त्रुटियाँ करने की प्रवृत्ति), प्रमाद (भ्रान्त होने की प्रवृत्ति), विप्रलिप्सा (छल-कपट करने की प्रवृत्ति) तथा करणापाटव (अपूर्ण इन्द्रियाँ)। इस तरह ब्रह्मा भी फँस गये।

ब्रह्मा ने अपनी माया द्वारा यह परीक्षा लेनी चाही कि कृष्ण वहाँ वास्तव में उपस्थित हैं या नहीं। ये ग्वालबाल तो कृष्ण के स्वांश हैं ही (*आनन्दचिन्मय-रसप्रतिभाविताभि:*)। बाद में कृष्ण ब्रह्मा को यह दिखलायेंगे कि किस प्रकार वे अपना विस्तार हर वस्तु में अपनी ह्लादिनी शक्ति के रूप में करते हैं—*आनन्दचिन्मयरस। ह्लादिनी शक्तिरस्मात*—कृष्ण की एक दिव्य शक्ति है, जो ह्लादिनी शक्ति कहलाती है। वे भौतिक शक्ति से उत्पन्न किसी भी वस्तु का भोग नहीं करते। अत: ब्रह्मा देखेंगे कि भगवान् कृष्ण किस तरह अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं।

ब्रह्माजी कृष्ण के संगियों को उठा ले जाना चाहते थे किन्तु धोखे से वे अन्य बालकों तथा बछड़ों को लेते गये। रावण सीताजी को ले जाना चाहता था किन्तु यह असम्भव था अतएव वह माया सीता को ले गया। इसी प्रकार ब्रह्माजी *मायार्भका:*—कृष्ण की माया द्वारा प्रकट बालकों को ले गये। ब्रह्मा इन मायार्भकों को तो कोई अद्वितीय ऐश्वर्य दिखला सकते थे किन्तु वे कृष्ण के संगियों को कोई अद्वितीय शक्ति नहीं दिखला सकते थे। इसे वे स्वयं आगे देखेंगे। *मायार्भकस्य ईशितु: ।* यह माया परम नियन्ता—*प्रभवत:*—सर्वशक्तिमान परम पुरुष कृष्ण द्वारा उत्पन्न की गई थी और इसका परिणाम हम आगे देखेंगे। भौतिक जगत में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति माया के वश में रहता है। इसीलिए यह लीला *ब्रह्मविमोहन लीला* कहलाती है। *मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्* (भगवद्गीता ७.१३)। भौतिक विधि से उत्पन्न व्यक्ति कृष्ण को पूरी तरह नहीं समझ पाते। यहाँ तक कि देवता भी उन्हें नहीं समझ पाते (*मुह्यन्ति यत् सूरय:*)। *तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये* (भागवत १.१.१)। ब्रह्मा से लेकर

छोटे से छोटे कीट तक को कृष्ण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; वत्सान्—बछड़ों को; अदृष्ट्वा—जंगल में न देख कर; एत्य—बाद में; पुलिने अपि—यमुना के तट में भी; च—भी; वत्सपान्—ग्वालबालों को; उभौ अपि—दोनों ही को (बछड़ों तथा बालकों को); वने—जंगल में; कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; विचिकाय—सर्वत्र ढूँढ़ा; समन्ततः—इधर-उधर।

तत्पश्चात् जब कृष्ण बछड़ों को खोज न पाये तो वे यमुना के तट पर लौट आये किन्तु वहाँ भी उन्होंने ग्वालबालों को नहीं देखा। इस तरह वे बछड़ों तथा बालकों को ऐसे ढूँढ़ने लगे, मानों उनकी समझ में न आ रहा हो कि यह क्या हो गया।

तात्पर्य : कृष्ण तुरन्त समझ गये कि ब्रह्मा ही बालकों तथा बछड़ों को चुरा ले गये हैं किन्तु वे अबोध बालक की तरह उन्हें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे जिससे ब्रह्मा कृष्ण की माया को न समझ सकें। यह सब नाटकीय ढंग से हुआ। नाटक का पात्र हर बात जानता रहता है किन्तु मंच पर वह इस तरह कार्य करता है कि लोग उसे समझ नहीं पाते।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

क्व अपि—कहीं भी; अदृष्ट्वा—न देखकर; अन्तः-विपिने—जंगल के भीतर; वत्सान्—बछड़ों को; पालान् च—तथा उनकी रक्षा करने वाले ग्वालबालों को; विश्व-वित्—इस जगत में हो रही प्रत्येक बात को जानने वाले कृष्ण; सर्वम्—हर वस्तु को; विधि-कृतम्—ब्रह्मा द्वारा सम्पन्न; कृष्णः—कृष्ण; सहसा—तुरन्त; अवजगाम ह—समझ गये।

जब कृष्ण बछड़ों तथा उनके पालक ग्वालबालकों को जंगल में कहीं भी ढूँढ़ न पाये तो वे तुरन्त समझ गये कि यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

तात्पर्य : यद्यपि कृष्ण *विश्ववित्*—सारे ब्रह्माण्ड में घटने वाली प्रत्येक बात को जानते हैं किन्तु उन्होंने अबोध बालक की तरह ब्रह्मा की करतूत के प्रति अनभिज्ञता प्रकट की, यद्यपि वे तुरन्त ही जान गये थे कि यह सब ब्रह्मा की करनी-धरनी है। यह लीला *ब्रह्मविमोहन* कहलाती है। ब्रह्मा पहले से ही अबोध बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं से मोहित थे और अब तो वे और भी अधिक मोहित हो गये।

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कृष्णः—भगवान्; मुदम्—आनन्द; कर्तुम्—उत्पन्न करने के लिए; तत्-मातृणाम् च—ग्वालबालों तथा बछड़ों की माताओं के; कस्य च—तथा ब्रह्मा के (आनन्द के लिए); उभयायितम्—बछड़ों तथा बालकों, दोनों के रूप में विस्तार; आत्मानम्—स्वयं; चक्रे—किया; विश्व-कृत् ईश्वरः—सम्पूर्ण जगत के स्रष्टा होने के कारण उनके लिए यह कठिन न था।

तत्पश्चात् ब्रह्मा को तथा बछड़ों एवं ग्वालबालों की माताओं को आनन्दित करने के लिए, समस्त ब्रह्माण्ड के स्रष्टा कृष्ण ने बछड़ों तथा बालकों के रूप में अपना विस्तार कर लिया।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्मा पहले ही माया में फँस चुके थे किन्तु वे ग्वालबालों को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे। जब वे बालकों तथा बछड़ों को चुरा कर अपने घर पहुँचे तो कृष्ण ने ब्रह्मा के लिए तथा बालकों की माताओं के लिए दूसरा चमत्कार उत्पन्न कर दिया—उन्होंने फिर से जंगल में भोजन-लीला स्थापित कर दी और उसी तरह बालकों को भोजन करते और बछड़ों को चरते प्रकट कर दिया। वेदों के अनुसार *एकं बहुस्याम्*—भगवान् अपने आपको असंख्य बछड़ों तथा बालकों में बदल सकते हैं जैसाकि ब्रह्मा को मोहित करने के लिए उन्होंने किया।

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यावत् वत्सप—ग्वालबालों की ही तरह के; वत्सक-अल्पक-वपुः—तथा बछड़ों के कोमल शरीरों जैसे ही; यावत् कर-अङ्घ्रि-आदिकम्—वैसी ही नाप के हाथ-पैर वाले; यावत् यष्टि-विषाण-वेणु-दल-शिक्—जैसे उनके बिगुल, वंशी, लाठियाँ, भोजन के छींके आदि थे ठीक वैसे ही; यावत् विभूषा-अम्बरम्—जैसे उनके गहने तथा वस्त्र थे ठीक वैसे ही; यावत् शील-गुण-अभिधा-आकृति-वयः—वैसे ही गुण, आदत, स्वरूप, लक्षण तथा शारीरिक स्वरूप वाले; यावत् विहार-आदिकम्—वैसी ही रुचि या मनोरंजन वाले; सर्वम्—हर वस्तु; विष्णु-मयम्—विष्णु या वासुदेव के अंश; गिरः अङ्ग-वत्—उन्हीं की तरह की वाणी; अजः—कृष्ण ने; सर्व-स्वरूपः बभौ—स्वयं हर वस्तु उत्पन्न कर दी।

अपने वासुदेव रूप में कृष्ण ने खोये हुए ग्वाल-बालकों तथा बछड़ों की जितनी संख्या थी, उतने ही वैसे ही शारीरिक स्वरूपों, उसी तरह के हाथों, पाँवों तथा अन्य अंगों वाले, उनकी लाठियों, तुरहियों तथा वंशियों, उनके भोजन के छींकों, विभिन्न प्रकार से पहनी हुई उनकी विशेष वेशभूषाओं तथा गहनों, उनके नामों, उम्रों तथा विशेष कार्यकलापों एवं गुणों से युक्त स्वरूपों में अपना विस्तार कर लिया। इस प्रकार अपना विस्तार करके सुन्दर कृष्ण ने यह उक्ति सिद्ध कर दी—*समग्र जगद् विष्णुमयम्*—भगवान् विष्णु सर्वव्यापी हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में कहा गया है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्

आद्यम् पुराणपुरुषं नवयौवनं च॥

कृष्ण *परं ब्रह्म* तथा *आद्यम्*—हर वस्तु के आदि हैं। वे आदि पुरुष, सर्वदा यौवन से पूर्ण रहने वाले हैं। वे कल्पना से अधिक रूपों में विस्तार कर सकते हैं फिर भी वे अपने आदि रूप से नहीं गिरते इसलिए वे अच्युत हैं। यही भगवान् हैं। *सर्वं विष्णुमयं जगत्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म।* इस तरह कृष्ण ने सिद्ध कर दिया कि वे सर्वस्व हैं और वे कुछ भी बन सकते हैं फिर भी वे हर वस्तु से भिन्न रहते हैं (*मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित:*)। ऐसे कृष्ण *अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व* दर्शन द्वारा जाने जाते हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते*—कृष्ण पूर्ण हैं और सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण लाखों ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने पर भी वे बिना किसी परिवर्तन के पूर्ववत् ऐश्वर्यवान बने रहते हैं (*अद्वैतम्*)। विभिन्न वैष्णव आचार्य विशुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैताद्वैत दर्शनों के माध्यम से इसी की व्याख्या करते हैं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि आचार्यों से कृष्ण के विषय में जानें। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जो व्यक्ति आचार्यों के मार्ग का अनुसरण करता है, वह वस्तुओं को यथारूप में जानता है। ऐसा व्यक्ति कृष्ण को यथारूप में जान सकता है, चाहे कुछ हद तक ही सही और कृष्ण को समझ लेने पर (*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वत:*) वह भवबन्धन से मुक्त हो जाता है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)।

स्वयमात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपै: ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २०॥

शब्दार्थ

स्वयम् आत्मा—परमात्मा स्वरूप कृष्ण; आत्म-गो-वत्सान्—अपने ही स्वरूप बछड़ों में अपना विस्तार कर लिया; प्रतिवार्य आत्म-वत्सपै:—पुन: उन्होंने बछड़ों को चराने वाले ग्वालों में परिणत कर लिया; क्रीडन्—इस तरह उन लीलाओं में होने वाली हर वस्तु स्वयं बन गये; आत्म-विहारै: च—स्वयं ही अनेक प्रकार से आनन्द लेने लगे; सर्व-आत्मा—परमात्मा, कृष्ण; प्राविशत्—प्रविष्ट किया; व्रजम्—व्रजभूमि में जो महाराज नन्द तथा यशोदा की भूमि है।.

इस तरह अपना विस्तार करने के बाद जिससे वे सभी बछड़ों तथा बालकों की तरह लगें और साथ ही उनके अगुवा भी लगें, कृष्ण ने अब अपने पिता नन्द महाराज की व्रजभूमि में इस तरह प्रवेश किया जिस तरह वे उन सबके साथ आनन्द मनाते हुए सामान्यतया किया करते थे।

तात्पर्य : अपने संगी ग्वालबालों के साथ बछड़ों तथा गौवों की रखवाली करते हुए कृष्ण सामान्यतया जंगल तथा चरागाह में रहा करते थे। अब जबकि उस असली टोली को ब्रह्मा चुरा ले गये थे कृष्ण ने ही उन सबों का रूप धारण कर लिया था। इसे कोई भी, यहाँ तक कि बलदेव भी, नहीं जान पाये और वे अपना काम करते रहे। वे अपने मित्रों को काम करने के लिए आदेश देते जा रहे थे, वे बछड़ों पर नियंत्रण रख रहे थे और जब नई घास के लोभ में वे इधर-उधर चले जाते तो उन्हें जंगल में ढूँढ़ने भी स्वयं जाते। वे ही बछड़े और ग्वालबाल बने हुए थे। यह कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति थी। श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है—*राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मात्।* राधा और कृष्ण एक हैं। कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति का विस्तार करके राधारानी बन जाते हैं। वही ह्लादिनी शक्ति (*आनन्दचिन्मयरस*) तब भी विस्तृत हुई जब वे स्वयं बछड़े तथा बालक बन गए और व्रजभूमि में आनन्द-मंगल मनाने लगे। यह सब *योगमाया* शक्ति द्वारा किया गया था। जो महामाया शक्ति के अधीन हैं उनके लिए यह अचिन्त्य है।

तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्-तत्-वत्सान्—जिन जिन गायों के जो जो बछड़े थे, उन्हें; पृथक्—अलग अलग; नीत्वा—ले जाकर; तत्-तत्-गोष्ठे—उनकी अपनी अपनी गोशालाओं में; निवेश्य—भीतर करके; सः—कृष्ण ने; तत्-तत्-आत्मा—पहले जैसे विभिन्न व्यक्तियों के रूप में; अभवत्—अपना विस्तार कर लिया; राजन्—हे राजा परीक्षित; तत्-तत्-सद्म—उन उन घरों में; प्रविष्टवान्—घुस गये (इस तरह कृष्ण सर्वत्र थे)।

हे महाराज परीक्षित, जिन कृष्ण ने अपने को विभिन्न बछड़ों तथा भिन्न भिन्न ग्वालबालों में विभक्त कर लिया था वे अब बछड़ों के रूप में विभिन्न गोशालाओं में और फिर विभिन्न बालकों के रूपों में विभिन्न घरों में घुसे।

तात्पर्य : कृष्ण के अनेकानेक मित्र थे जिनमें से श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल प्रमुख थे। इस तरह कृष्ण स्वयं श्रीदामा, सुदामा तथा सुबल बन कर उनके घरों में उनके ही बछड़ों समेत घुसे।

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता
उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं

मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्-मातरः—उन उन ग्वालबालों की माताएँ; वेणु-रव—ग्वालबालों द्वारा वंशी तथा बिगुल बजाये जाने की ध्वनि से; त्वर—तुरन्त; उत्थिताः—अपने गृहकार्यों को छोड़ कर उठ गईं; उत्थाप्य—तुरन्त अपने पुत्रों को उठाकर; दोर्भिः—दोनों बाँहों से; परिरभ्य—आलिंगन करके; निर्भरम्—किसी प्रकार का भार अनुभव किये बिना; स्नेह-स्नुत—प्रगाढ़ प्रेम से बहते हुए; स्तन्य-पयः—अपने स्तन का दूध; सुधा-आसवम्—अमृतमय प्रेम की तरह सुस्वादु; मत्वा—मान कर; परम्—परम्; ब्रह्म—कृष्ण; सुतान् अपाययन्—अपने पुत्रों को पिलाया।

बालकों की माताओं ने अपने अपने पुत्रों की वंशियों तथा बिगुलों की ध्वनि सुन कर अपना अपना गृहकार्य छोड़ कर उन्हें गोदों में उठा लिया, दोनों बाँहों में भर कर उनका आलिंगन किया और प्रगाढ़ प्रेम के कारण, विशेष रूप से कृष्ण के प्रति प्रेम के कारण स्तनों से बह रहा दूध वे उन्हें पिलाने लगीं। वस्तुतः कृष्ण सर्वस्व हैं लेकिन उस समय अत्यधिक स्नेह व्यक्त करती हुईं वे परब्रह्म कृष्ण को दूध पिलाने में विशेष आनन्द का अनुभव करने लगीं और कृष्ण ने उन माताओं का क्रमशः दूध पिया मानो वह अमृतमय पेय हो।

तात्पर्य : यद्यपि सारी वृद्धा गोपियाँ जानती थीं कि कृष्ण तो यशोदा के पुत्र हैं फिर भी उनकी अभिलाषा थी, ''यदि कृष्ण मेरा पुत्र होता तो मैं भी यशोदा की तरह उसकी देख-भाल करती।'' यही उनकी आन्तरिक इच्छा थी। इसीलिए उन्हें तुष्ट करने के लिए अब उनका पुत्र रूप धारण करके कृष्ण ने उनकी अभिलाषा पूरी की। उन्होंने कृष्ण का आलिंगन करके तथा दूध पिलाकर कृष्ण के लिए अपने विशेष प्रेम को बढ़ाया और कृष्ण ने उनका स्तन-पान अमृतमय पेय के रूप में किया। इस तरह ब्रह्मा को मोहित करते हुए स्वयं उन्होंने अन्य माताओं तथा अपने बीच योगमाया द्वारा उत्पन्न दिव्य आनन्द का भोग किया।

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपना-
लङ्काररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्
सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; नृप—हे राजा (महाराज परीक्षित); उन्मर्दन—उनकी तेल से मालिश करके; मज्ज—स्नान कराकर; लेपन—शरीर में उबटन लगाकर; अलङ्कार—आभूषणों से सजाकर; रक्षा—रक्षा-मंत्रों का उच्चारण करके; तिलक—शरीर में बारह स्थानों पर तिलक लगाकर; अशन-आदिभिः—तथा खूब खिलाकर; संलालितः—इस तरह माताओं द्वारा लाड़-प्यार से; स्व-आचरितैः—उनके अपने आचरण से; प्रहर्ष-यन्—माताओं को प्रसन्न करते हुए; सायम्—संध्या समय; गतः—आ गये; याम-यमेन—हर काम के लिए समय पूरा होने पर; माधवः—भगवान् कृष्ण।

तत्पश्चात्, हे महाराज परीक्षित, अपनी लीलाओं के कार्यक्रमानुसार कृष्ण शाम को लौटते,

हर ग्वालबाल के घर घुसते और असली बच्चों की तरह कार्य करते जिससे उनकी माताओं को दिव्य आनन्द प्राप्त होता। माताएँ अपने बालकों की देखभाल करतीं, उन्हें तेल लगातीं, उन्हें नहलातीं, चन्दन का लेप लगातीं, गहनों से सजातीं, रक्षा-मंत्र पढ़तीं, उनके शरीर पर तिलक लगातीं और उन्हें भोजन करातीं। इस तरह माताएँ अपने हाथों से कृष्ण की सेवा करतीं।

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं
हुङ्कारघोषैः परिहूतसङ्गतान् ।
स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्
मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४॥

शब्दार्थ

गावः—बछड़े; ततः—तत्पश्चात्; गोष्ठम्—गोशालाओं में; उपेत्य—पहुँच कर; सत्वरम्—शीघ्र ही; हुङ्कार-घोषैः—रँभाती हुई; परिहूत-सङ्गतान्—गाएँ बुलाने के लिए; स्वकान् स्वकान्—अपनी अपनी माताओं को; वत्सतरान्—अपने अपने बछड़ों को; अपाययन्—पिलाती हुईं; मुहुः—बारम्बार; लिहन्त्यः—बछड़ों को चाटतीं; स्रवत् औधसम् पयः—उनके थनों से प्रचुर दूध बहता हुआ।

तत्पश्चात् सारी गौवें अपने अपने गोष्ठों में घुसतीं और अपने अपने बछड़ों को बुलाने के लिए जोर से रँभाने लगतीं। जब बछड़े आ जाते तो माताएँ उनके शरीरों को बारम्बार चाटतीं और उन्हें अपने थनों से बह रहा प्रचुर दूध पिलातीं।

तात्पर्य : बछड़ों तथा उनकी माताओं के बीच के सारे कार्यकलाप स्वयं कृष्ण चला रहे थे।

गोगोपीनां मातृतास्मिन्नासीत्स्नेहर्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५॥

शब्दार्थ

गो-गोपीनाम्—गौवों तथा गोपियों दोनों के लिए; मातृता—मातृ-स्नेह; अस्मिन्—कृष्ण के प्रति; आसीत्—सामान्यतया था; स्नेह—स्नेह की; ऋधिकाम्—वृद्धि; विना—रहित; पुरः-वत्—पहले की तरह; आसु—गौवों तथा गोपियों के बीच था; अपि—यद्यपि; हरेः—कृष्ण का; तोकता—मेरा पुत्र कृष्ण है; मायया विना—बिना माया के।

प्रारम्भ से ही गोपियों का कृष्ण के प्रति मातृवत स्नेह था। कृष्ण के प्रति उनका यह स्नेह अपने पुत्रों के प्रति स्नेह से भी अधिक था। इस तरह अपने स्नेह-प्रदर्शन में वे कृष्ण तथा अपने पुत्रों में भेद बरतती थीं किन्तु अब वह भेद दूर हो चुका था।

तात्पर्य : अपने तथा पराये पुत्र के बीच भेद होना अस्वाभाविक नहीं है। अनेक वृद्धा महिलाएँ अन्यों के पुत्रों से मातृवत् स्नेह रखती हैं। किन्तु वे भी अपने तथा परायों में भेद बरतती हैं। किन्तु अब वृद्धा गोपिकाएँ अपने पुत्रों तथा कृष्ण में यह भेद नहीं बरत पाईं क्योंकि उनके पुत्रों को तो ब्रह्मा चुरा

ले गये थे और कृष्ण ही उनके पुत्र बने हुए थे। अतएव अपने पुत्रों के लिए जो अब कृष्ण स्वयं ही थे, यह अधिक स्नेह मोह के कारण था, जो ब्रह्मा जैसा ही था। पहले श्रीदामा, सुदामा, सुबल और कृष्ण के अन्य मित्रों की माताएँ एक-दूसरे के पुत्रों से ऐसा स्नेह नहीं करती थीं किन्तु अब गोपियाँ सारे बालकों को अपना ही पुत्र मान रही थीं। इसीलिए शुकदेव गोस्वामी स्नेह की इस वृद्धि को ब्रह्मा, गोपियों, गौवों इत्यादि के मोह के रूप में बतलाना चाहते थे।

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ।
शनैर्नि:सीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

व्रज-ओकसाम्—व्रज के सारे निवासियों का; स्व-तोकेषु—अपने अपने पुत्रों के लिए; स्नेह-वल्ली—स्नेह रूपी लता; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; अनु-अहम्—प्रतिदिन; शनै:—धीरे धीरे; नि:सीम—अपार; ववृधे—बढ़ता गया; यथा कृष्णे—कृष्ण को पुत्र रूप मानने से; तु—निस्सन्देह; अपूर्व-वत्—जैसाकि पहले कभी न था।.

यद्यपि व्रजभूमि के सारे निवासियों—ग्वालों तथा गोपियों—में पहले से ही कृष्ण के लिए अपने निजी पुत्रों से अधिक स्नेह था किन्तु अब एक वर्ष तक उनके अपने पुत्रों के प्रति यह स्नेह लगातार बढ़ता ही गया क्योंकि अब कृष्ण उनके पुत्र बन चुके थे। अब अपने पुत्रों के प्रति, जो कि कृष्ण ही थे, उनके प्रेम की वृद्धि का कोई वारापार न था। नित्य ही उन्हें अपने पुत्रों से कृष्ण जितना प्रेम करने की नई प्रेरणा प्राप्त हो रही थी।

इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण स: ।
पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयो: ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; आत्मा—परमात्मा, कृष्ण ने; आत्मना—अपने आप से; आत्मानम्—पुन: अपने को; वत्स-पाल-मिषेण—ग्वालों तथा बछड़ों के वेश में; स:—साक्षात् कृष्ण; पालयन्—पालन करते हुए; वत्स-प:—बछड़ों को चराते हुए; वर्षम्—लगातार एक वर्ष तक; चिक्रीडे—क्रीडाओं का आनन्द लिया; वन-गोष्ठयो:—वृन्दावन तथा जंगल दोनों में ही।.

इस तरह अपने को ग्वालबालों तथा बछड़ों का समूह बना लेने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपने को उसी रूप में बनाये रहे। वे उसी प्रकार से वृन्दावन तथा जंगल दोनों ही जगहों में एक वर्ष तक अपनी लीलाएँ करते रहे।

तात्पर्य : जो कुछ था वह कृष्ण था। बछड़े, ग्वालबाल तथा उनके पालक स्वयं सभी कृष्ण थे। दूसरे शब्दों में, कृष्ण ने अपना विस्तार नाना प्रकार के बछड़ों तथा ग्वालबालों में कर लिया था और

एक वर्ष तक वे अनवरत अपनी क्रीडाएँ करते रहे। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि कृष्ण का विस्तार (अंश) हर एक के हृदय में परमात्मा रूप में विद्यमान है। इसी तरह अपने को परमात्मा रूप में विस्तार न देकर उन्होंने बछड़ों तथा ग्वालबालों के अंश रूप में लगातार एक वर्ष के लिए विस्तार कर लिया।

एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; चारयन् वत्सान्—बछड़ों को चराते हुए; स-रामः—बलराम समेत; वनम्—वन में; आविशत्—घुसे; पञ्च-षासु—पाँच या छह; त्रि-यामासु—रातें; हायन—पूरा वर्ष; अपूरणीषु—पूरी न होने पर (एक वर्ष में पाँच-छह दिन शेष रहने पर); अजः—भगवान् श्रीकृष्ण।

एक दिन जबकि वर्ष पूरा होने में अभी पाँच-छः रातें शेष थीं कृष्ण बलराम सहित बछड़ों को चराते हुए जंगल में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : इस समय तक बलराम भी ब्रह्मा जैसे मोह से आवृत थे। बलराम भी यह नहीं जानते थे कि ये सारे बछड़े तथा ग्वालबाल कृष्ण के ही विस्तार हैं या स्वयं वे भी कृष्ण के विस्तार हैं। बलराम को यह बात वर्ष पूरा होने के केवल पाँच-छः दिन पूर्व बतलाई गई।

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; विदूरात्—अधिक दूर स्थान से नहीं; चरतः—चरती हुईं; गावः—सारी गौवें; वत्सान्—तथा उनके बछड़े; उपव्रजम्—वृन्दावन के निकट चरते हुए; गोवर्धन-अद्रि-शिरसि—गोवर्धन पर्वत की चोटी पर; चरन्त्यः—चरती हुईं; ददृशुः—देखा; तृणम्—पास ही मुलायम घास।

तत्पश्चात् गोवर्धन पर्वत की चोटी पर चरती हुई गौवों ने कुछ हरी घास खोजने के लिए नीचे देखा तो उन्होंने अपने बछड़ों को वृन्दावन के निकट चरते देखा जो अधिक दूरी पर नहीं था।

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा
स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छो
'गाद्धुङ्कृतैरास्त्रुपया जवेन ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; अथ—तत्पश्चात्; तत्-स्नेह-वशः—अपने बछड़ों के लिए बढ़े हुए स्नेह के कारण; अस्मृत-आत्मा—मानों अपने आप को भूल गईं; सः—वह; गो-व्रजः—गौवों का समूह; अति-आत्म-प-दुर्ग-मार्गः—मार्ग के अत्यन्त दुर्गम होते हुए भी

बछड़ों के लिए अति स्नेह के कारण चराने वालों से बिछड़ कर दूर निकल आईं; द्वि-पात्—पैरों की जोड़ी; ककुत्-ग्रीवः—उनकी गर्दन के साथ ही उनके डिल्ले (कूबड़) हिल रहे थे; उदास्य-पुच्छः—अपने सिर तथा पूछें उठाये; अगात्—आईं; हुङ्कृतैः—हुंकार करती; आस्रु-पयाः—उनके थनों से दूध बह रहा था; जवेन—बलपूर्वक।.

जब गायों ने गोवर्धन पर्वत की चोटी से अपने अपने बछड़ों को देखा तो वे अधिक स्नेहवश अपने आप को तथा अपने चराने वालों को भूल गईं और दुर्गम मार्ग होते हुए भी वे अपने बछड़ों की ओर अतीव चिन्तित होकर दौंीं मानो वे दो ही पाँवों से दौड़ रही हों। उनके थन दूध से भरे थे और उनमें से दूध बह रहा था, उनके सिर तथा पूछें उठी हुई थीं और उनके डिल्ले (कूबड़) उनकी गर्दन के साथ साथ हिल रहे थे। वे तब तक तेजी से दौड़ती रहीं जब तक वे अपने बच्चों के पास दूध पिलाने पहुँच नहीं गईं।

तात्पर्य : सामान्यतया गाय तथा बछड़े अलग-अलग चराये जाते हैं। बड़े लोग गौवों की रखवाली करते हैं और छोटे लड़के बछड़ों की। किन्तु इस बार गौवों ने ज्योंही गोवर्धन पर्वत के नीचे अपने बछड़ों को देखा वे अपनी स्थिति भूल गईं और तेजी से अपनी पूँछ उठाये, अगले तथा पिछले पैर जोड़े दौड़ती रहीं जब तक वे अपने बछड़ों के पास पहुँच नहीं गईं।

समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

समेत्य—एकत्र करके; गावः—सारी गौवें; अधः—नीचे, गोवर्धन पर्वत के नीचे; वत्सान्—अपने बछड़ों को; वत्स-वत्यः—मानों उन्हें नये बछड़ें उत्पन्न हुए हों; अपि—यद्यपि नये बछड़े उपस्थित थे; अपाययन्—उन्हें पिलाया; गिलन्त्यः—निगलते हुए; इव—मानो; च—भी; अङ्गानि—उनके शरीरों को; लिहन्त्यः—चाटते हुए मानो नवजात बछड़े हों; स्व-ओधसम् पयः—अपने थन से बहता हुआ दूध।.

गौवों ने नये बछड़ों को जन्म दिया था किन्तु गोवर्धन पर्वत से नीचे आते हुए, अपने पुराने बछड़ों के लिए अतीव स्नेह के कारण इन्हीं बछड़ों को अपने थन का दूध पीने दिया। वे चिन्तित होकर उनका शरीर चाटने लगीं मानो उन्हें निगल जाना चाहती हों।

गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

गोपाः—ग्वाले; तत्-रोधन-आयास—गायों को बछड़ों की ओर जाने से रोकने के अपने प्रयास का; मौघ्य—निराशा के कारण; लज्जा—लज्जित होकर; उरु-मन्युना—साथ ही काफी क्रुद्ध होकर; दुर्ग-अध्व-कृच्छ्रतः—बड़ी कठिनाई से दुर्गम मार्ग पार करते हुए; अभ्येत्य—वहाँ पहुँच कर; गो-वत्सैः—बछड़ों समेत; ददृशुः—देखा; सुतान्—अपने अपने पुत्रों को।.

गौवों को उनके बछड़ों के पास जाने से रोकने में असमर्थ ग्वाले लज्जित होने के साथ साथ क्रुद्ध भी हुए। उन्होंने बड़ी कठिनाई से दुर्गम मार्ग पार किया किन्तु जब वे नीचे आये और अपने अपने पुत्रों को देखा तो वे अत्यधिक स्नेह से अभिभूत हो गये।

तात्पर्य : हर एक में कृष्ण के लिए स्नेह बढ़ रहा था। जब ग्वालों ने पर्वत से नीचे आकर अपने अपने पुत्रों को देखा, जो कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई न थे, तो उनका स्नेह बढ़ गया।

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया
जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि
घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तत्-ईक्षण-उत्प्रेम-रस-आप्लुत-आशयाः—ग्वालों के सारे विचार अपने पुत्रों को देख कर उठने वाले वात्सल्य-प्रेम में लीन हो गये; जात-अनुरागाः—अत्यधिक आकर्षण का अनुभव करते हुए; गत-मन्यवः—क्रोध दूर हो जाने से; अर्भकान्—अपने पुत्रों को; उदुह्य—उठाकर; दोर्भिः—अपनी बाँहों से; परिरभ्य—आलिंगन करके; मूर्धनि—सिर पर; घ्राणैः—सूँघ कर; अवापुः—प्राप्त किया; परमाम्—सर्वोच्च; मुदम्—आनन्द; ते—उन ग्वालों ने।

उस समय ग्वालों के सारे विचार अपने अपने पुत्रों को देखने से उत्पन्न वात्सल्य-प्रेम रस में विलीन हो गये। अत्यधिक आकर्षण का अनुभव करने से उनका क्रोध छू-मन्तर हो गया। उन्होंने अपने पुत्रों को उठाकर बाँहों में भर कर आलिंगन किया और उनके सिरों को सूँघ कर सर्वोच्च आनन्द प्राप्त किया।

तात्पर्य : ब्रह्मा द्वारा असली ग्वालबालों तथा बछड़ों के चुरा लिए जाने के बाद कृष्ण अपना विस्तार करके स्वयं ग्वालबाल तथा बछड़े बन गये थे। क्योंकि बालक वस्तुतः कृष्ण के अंश थे, इसलिए ग्वाले इन बच्चों के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हुए। पहले ये ग्वाले जब पर्वत की चोटी पर थे तो अत्यन्त क्रुद्ध थे। किन्तु कृष्ण होने के कारण उनके बालक अत्यधिक आकर्षक थे इसलिए विशेष प्रेमवश ग्वाले तुरन्त ही पर्वत से नीचे उतर आये।

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रवयसः—वयस्क; गोपाः—ग्वाले; तोक-आश्लेष-सुनिर्वृताः—अपने पुत्रों का आलिंगन करके परम प्रसन्न हुए; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; शनैः—धीरे धीरे; अपगताः—आलिंगन करना छोड़ कर जंगल लौट गये; तत्-अनुस्मृति-उद्-श्रवः—अपने पुत्रों का स्मरण करने पर उनकी आँखों से आँसू आ गये।

तत्पश्चात् प्रौढ़ ग्वाले अपने पुत्रों के आलिंगन से अत्यन्त तुष्ट होकर बड़ी कठिनाई और अनिच्छा से उनका आलिंगन धीरे धीरे छोड़ कर जंगल लौट आये। किन्तु जब उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हुआ तो उनकी आँखों से आँसू लुढ़क आये।

तात्पर्य : प्रारम्भ में ग्वाले क्रुद्ध थे कि गौवें बछड़ों से आकृष्ट हो रही हैं लेकिन जब वे ग्वाले पहाड़ी से नीचे आए, तो वे स्वयं अपने पुत्रों से आकृष्ट हो गये और इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों का आलिंगन किया। अपने पुत्र का आलिंगन करना और उसके सिर को सूँघना स्नेह के लक्षण हैं।

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

व्रजस्य—गायों के झुंड का; रामः—बलराम; प्रेम-ऋधेः—स्नेह बढ़ने के कारण; वीक्ष्य—देख कर; औत्-कण्ठ्यम्—अनुरक्ति; अनु-क्षणम्—निरन्तर; मुक्त-स्तनेषु—बड़े हो जाने के कारण अपनी माताओं का स्तन-पान छोड़ चुके थे; अपत्येषु—उन बछड़ों को; अपि—भी; अहेतु-वित्—कारण न समझने से; अचिन्तयत्—इस प्रकार सोचने लगे।

स्नेहाधिक्य के कारण गौवों को उन बछड़ों से भी निरन्तर अनुराग था, जो बड़े होने के कारण उनका दूध पीना छोड़ चुके थे। जब बलदेव ने यह अनुराग देखा तो इसका कारण उनकी समझ में नहीं आया अतः वे इस प्रकार सोचने लगे।

तात्पर्य : कुछ गायों के छोटे बछड़े थे, जो उनका दूध पीना शुरू कर चुके थे और कुछ ने अभी अभी बच्चे दिये थे किन्तु प्रेमवश गौवें भावावेश में आकर उन पुराने बछड़ों के प्रति भी स्नेह प्रदर्शित करने लगीं जिन्होंने दूध पीना छोड़ रखा था। ये बछड़े बड़े हो चुके थे किन्तु फिर भी माताएँ उन्हें दूध पिलाना चाह रही थीं। इसलिए बलराम को कुछ-कुछ आश्चर्य हुआ और उन्होंने कृष्ण से उनके इस व्यवहार का कारण पूछना चाहा। गौवें नए बछड़ों के उपस्थित होते हुए भी, अपने बड़े बछड़ों को दूध पिलाने के लिए अधिक उत्सुक थीं क्योंकि पुराने बछड़े कृष्ण के अंश थे। ये आश्चर्यजनक घटनाएँ योगमाया के प्रबन्ध से हो रही थीं। कृष्ण के निर्देशन में दो तरह की मायाएँ कार्य करती हैं—*महामाया* जो भौतिक जगत की शक्ति है तथा *योगमाया* जो आध्यात्मिक जगत की शक्ति है। ये असामान्य घटनाएँ *योगमाया* के प्रभाव से घट रही थीं। जिस दिन से ब्रह्मा ने बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुराया था उसी

दिन से योगमाया इस तरह कार्य कर रही थी कि वृन्दावन के वासी, जिसमें भगवान् बलराम भी सम्मिलित थे, यह नहीं समझ पाये कि योगमाया किस तरह से इन असामान्य घटनाओं को घटित कर रही है। किन्तु ज्यों ज्यों योगमाया धीरे धीरे कार्य करने लगी, तो विशेषकर बलराम समझ गये कि क्या हो रहा है अतएव उन्होंने कृष्ण से पूछा।

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; एतत्—यह; अद्भुतम्—अद्भुत; इव—जैसा; वासुदेवे—वासुदेव कृष्ण में; अखिल-आत्मनि—सारे जीवों के परमात्मा; व्रजस्य—सारे व्रजवासियों का; स-आत्मनः—मेरे समेत; तोकेषु—इन बालकों में; अपूर्वम्—अपूर्व; प्रेम—प्रेम; वर्धते—बढ़ रहा है।

यह विचित्र घटना क्या है? सभी व्रजवासियों का, मुझ समेत. इन बालकों तथा बछड़ों के प्रति अपूर्व प्रेम उसी तरह बढ़ रहा है, जिस तरह सब जीवों के परमात्मा भगवान् कृष्ण के प्रति हमारा प्रेम बढ़ता है।

तात्पर्य : प्रेम की यह वृद्धि माया नहीं थी। चूँकि कृष्ण ने अपना विस्तार प्रत्येक वस्तु के रूप में कर लिया था तथा वृन्दावन के हर वासी का संपूर्ण जीवन कृष्ण के निमित्त था, सारी गौवें कृष्ण-प्रेम के कारण नये बछड़ों की अपेक्षा पुराने बछड़ों में अधिक स्नेह दिखा रही थीं। इसी तरह पुरुष अपने पुत्रों के प्रति स्नेह में वृद्धि कर रहे थे। वृन्दावन के सारे वासियों में अपने अपने बच्चों के प्रति कृष्ण जैसा ही प्रेम देख कर बलराम चकित थे। इसी तरह गौवें अपने अपने बछड़ों के प्रति उतनी ही स्नेहिल हो उठी थीं जितनी कृष्ण के प्रति थीं। योगमाया का कार्य देख कर बलराम चकित थे। इसीलिए उन्होंने कृष्ण से पूछा, ''यह क्या हो रहा है? यह रहस्य क्या है?''

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; इयम्—यह; वा—अथवा; कुतः—कहाँ से; आयाता—आयी है; दैवी—देवी; वा—अथवा; नारी—स्त्री; उत—अथवा; आसुरी—राक्षसी; प्रायः—अधिकांशतः; माया—माया; अस्तु—हो सकती है; मे—मेरे; भर्तुः—प्रभु, कृष्ण के; न—नहीं; अन्या—कोई दूसरा; मे—मेरा; अपि—निश्चित रूप से; विमोहिनी—मोहग्रस्त करने वाली।

यह योगशक्ति कौन है और वह कहाँ से आई है? क्या वह देवी है या कोई राक्षसी है?

अवश्य ही वह मेरे प्रभु कृष्ण की माया होगी क्योंकि उसके अतिरिक्त मुझे और कौन मोह सकता है?

तात्पर्य : बलराम चकित थे। उन्होंने सोचा कि प्रेम का यह असाधारण प्रदर्शन या तो देवताओं की या किसी अद्‌भुत व्यक्ति की माया है। अन्यथा ऐसा परिवर्तन कैसे होता? उन्होंने सोचा, ''यह माया कोई *राक्षसी माया* हो सकती है किन्तु वह मुझे कैसे वशीभूत कर सकती है? ऐसा सम्भव नहीं। अत: यह अवश्य ही कृष्ण की माया है।'' इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह कृष्ण द्वारा उत्पन्न है, जिसे वे अपना आराध्यदेव मानते थे। उन्होंने सोचा, ''यह कृष्ण की करनी है और मैं भी इसकी योगशक्ति को रोक नहीं पाया।'' इस तरह बलराम समझ गये कि सारे लड़के तथा बछड़े कृष्ण के ही अंश हैं।

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ।
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इति सञ्चिन्त्य—इस प्रकार सोच कर; दाशार्हः—बलदेव ने; वत्सान्—बछड़ों को; स-वयसान्—अपने साथियों समेत; अपि—भी; सर्वान्—सारे; आचष्ट—देखा; वैकुण्ठम्—केवल श्रीकृष्ण रूप में; चक्षुषा वयुनेन—दिव्य ज्ञान के चक्षुओं द्वारा; सः—उसने (बलदेव ने)।

इस प्रकार सोचते हुए बलराम अपने दिव्य ज्ञान के चक्षुओं से देख सके कि ये सारे बछड़े तथा कृष्ण के साथी श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।

तात्पर्य : हर व्यक्ति भिन्न होता है। यहाँ तक कि जुड़वों में भी भेद होता है। फिर भी जब कृष्ण ने अपना विस्तार बालकों तथा बछड़ों के रूप में किया, तो हर बालक तथा हर बछड़ा अपने मूल रूप में प्रकट हुआ और हर एक में अपनी अपनी वही चाल-ढाल, वही रंग, वेश इत्यादि था क्योंकि कृष्ण इन सारे भेदों के साथ प्रकट हुए थे। यही कृष्ण का ऐश्वर्य था।

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते
त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदे-
त्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एते—ये लड़के; सुर-ईशाः—देवताओं में श्रेष्ठ; ऋषयः—ऋषिगण; न—नहीं; च—तथा; एते—ये बछड़े; त्वम्—तुम (कृष्ण); एव—केवल; भासि—प्रकट हो रहे हो; ईश—हे परम नियन्ता; भित्-आश्रये—नाना प्रकार के भेद में; अपि—होते हुए भी; सर्वम्—प्रत्येक वस्तु; पृथक्—विद्यमान; त्वम्—तुम (कृष्ण); निगमात्—संक्षेप में; कथम्—कैसे; वद—बतलाओ; इति—इस प्रकार; उक्तेन—(बलदेव द्वारा) प्रार्थना किये जाने पर; वृत्तम्—स्थिति; प्रभुणा—कृष्ण द्वारा (कही जाने पर); बलः—बलदेव; अवैत्—समझ गये।

भगवान् बलदेव ने कहा, ''हे परम नियन्ता, मेरे पहले सोचने के विपरीत ये बालक महान् देवता नहीं हैं न ही ये बछड़े नारद जैसे महान् ऋषि हैं। अब मैं देख सकता हूँ कि तुम्हीं अपने को नाना प्रकार के रूप में प्रकट कर रहे हो। एक होते हुए भी तुम बछड़ों तथा बालकों के विविध रूपों में विद्यमान हो। कृपा करके मुझे यह विस्तार से बतलाओ।'' बलदेव द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर कृष्ण ने सारी स्थिति समझा दी और बलदेव उसे समझ भी गये।

तात्पर्य : कृष्ण से असली स्थिति जानने के लिए बलराम ने पूछा, ''हे कृष्ण! पहले तो मैं समझ रहा था कि ये सारी गौवें, बछड़े तथा ग्वालबाल या तो महान् ऋषि या साधु-संत हैं अथवा देवता हैं किन्तु इस समय ऐसा लग रहा है कि वास्तव में ये तुम्हारे ही अंश हैं। ये सब तुम्हारे रूप हैं—तुम्हीं बछड़ों, गौवों और बालकों की भूमिका अदा कर रहे हो। इसका क्या रहस्य है? वे दूसरे बछड़े, गौवें तथा ग्वालबाल कहाँ गये? तुमने इन सब में अपना विस्तार क्यों किया? इसका कारण बतलाओ।'' बलराम के इस अनुरोध पर कृष्ण ने संक्षेप में सारी बात बतला दी—किस तरह ब्रह्मा ने बछड़ों और ग्वालबालों को चुराया और किस तरह कृष्ण अपना विस्तार करके इस घटना को छिपाये रहे जिससे लोग यह न जान पायें कि असली गौवें, बछड़े तथा लड़के खो गये हैं। इसलिए बलराम समझ गये कि यह माया नहीं अपितु कृष्ण का ऐश्वर्य है। कृष्ण सर्व-ऐश्वर्ययुक्त हैं और यह कृष्ण का एक और ऐश्वर्य ही था।

बलराम ने कहा, ''पहले तो मैंने समझा कि ये लड़के तथा बछड़े नारद जैसे महान् ऋषियों की शक्ति का प्रदर्शन हैं किन्तु अब मैं देख रहा हूँ कि ये लड़के तथा बछड़े तुम्हारे ही रूप हैं।'' कृष्ण से पूछने पर भगवान् बलराम को पता चला कि कृष्ण ही अनेक रूपों में उपस्थित थे। भगवान् ऐसा कर सकते हैं इसका उल्लेख *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) में हुआ है—*अद्वैतं अच्युतं अनादिं अनन्तरूपम्*—यद्यपि वे एक हैं किन्तु अनेक रूपों में विस्तार कर सकते हैं। वैदिक प्रमाण के अनुसार *एकं बहु स्याम्*—वे करोड़ों रूपों में विस्तार करके भी एक बने रहते हैं। इस दृष्टि से हर वस्तु आध्यात्मिक है क्योंकि वह कृष्ण का विस्तार (अंश) होती है अर्थात् सारी वस्तुएँ स्वयं कृष्ण या उनकी शक्ति की ही विस्तार हैं।

चूँकि शक्ति शक्तिमान से अभिन्न है, अत: शक्ति तथा शक्तिमान एक ही हैं (*शक्तिशक्तिमतोरभेद:*)। लेकिन मायावादियों का कहना है—*चिदचित्समन्वय:*—आत्मा तथा पदार्थ एक हैं। यह धारणा गलत है। आत्मा (*चित्*) पदार्थ (*अचित्*) से भिन्न है जैसाकि स्वयं कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.४-५) में कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अप्रमेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

''भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्न भौतिक प्रकृति बनती हैं। किन्तु इस अपरा प्रकृति के अतिरिक्त भी, हे महाबाहु अर्जुन! एक पराशक्ति है, जो उन सारे जीवों से बनी हुई है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं और ब्रह्माण्ड को धारण करते हैं।'' आत्मा तथा पदार्थ को एक नहीं किया जा सकता क्योंकि वे परा तथा अपरा शक्तियाँ हैं। फिर भी मायावादी अथवा अद्वैतवादी उन्हें एक बनाने का प्रयास करते हैं। यह ठीक नहीं है। यद्यपि आत्मा तथा पदार्थ अन्तत: एक ही स्रोत से आते हैं किन्तु उन्हें एक नहीं बनाया जा सकता। उदाहरणार्थ, ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो हमारे शरीर से निकलती हैं किन्तु एक ही स्रोत से आने पर भी उन्हें एक नहीं कहा जा सकता। हमें ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि परम स्रोत एक है किन्तु इस स्रोत से निकलने वाली वस्तुओं को अपर तथा पर मानना चाहिए। मायावाद तथा वैष्णव दर्शनों का अन्तर इतना ही है कि वैष्णव दर्शन में इस तथ्य को मान्यता दी जाती है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन *अचिन्त्य भेदाभेद* कहलाता है। उदाहरणास्वरूप, अग्नि तथा उष्मा को विलग नहीं किया जा सकता क्योंकि जहाँ अग्नि है, वहीं उष्मा है और जहाँ उष्मा है, वहीं अग्नि है। तो भी जहाँ हम अग्नि को छू नहीं सकते वहीं उष्मा को हम सहन कर लेते हैं। इस तरह वे एक हो करके भी भिन्न भिन्न हैं।

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ।
पुरोवदाब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; एत्य—लौट कर; आत्म-भू:—ब्रह्मा ने; आत्म-मानेन—अपनी माप के अनुसार; त्रुटि-अनेहसा—क्षण-भर में; पुर:-वत्—पहले की तरह; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; क्रीडन्तम्—खेलते हुए; ददृशे—देखा; स-कलम्—अपने अंशों सहित; हरिम्—भगवान् हरि (श्रीकृष्ण) को।.

जब ब्रह्मा एक क्षण के बाद (अपनी गणना के अनुसार) वहाँ लौटे तो उन्होंने देखा कि यद्यपि मनुष्य की माप के अनुसार पूरा एक वर्ष बीत चुका है, तो भी कृष्ण उतने समय बाद भी उसी तरह अपने अंशरूप बालकों तथा बछड़ों के साथ खेलने में व्यस्त हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा तो अपने समय के अनुसार क्षण-भर के लिए गये थे किन्तु जब वे लौटे तो मनुष्य की माप के अनुसार एक वर्ष बीत चुका था। विभिन्न लोकों में काल की गणना भिन्न भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, मनुष्य द्वारा निर्मित अन्तरिक्षयान एक घंटा पच्चीस मिनट में पृथ्वी का चक्कर लगा सकता है—और इस तरह एक दिन पूरा कर सकता है, जबकि पृथ्वी पर रहने वाले लोगों के लिए दिन में चौबीस घण्टे होते हैं। इसलिए ब्रह्मा का एक क्षण पृथ्वी पर एक वर्ष के तुल्य था। कृष्ण पूरे एक वर्ष इतने रूपों में अपना विस्तार किये रहे किन्तु योगमाया की योजना के फलस्वरूप बलराम के अतिरिक्त अन्य कोई इसे जान नहीं पाया।

ब्रह्मा अपनी गणना के अनुसार एक क्षण बाद यह देखने के लिए लौटे कि उनके द्वारा बालकों तथा बछड़ों को चुराने से कैसा कौतुक हुआ होगा। किन्तु साथ ही वे भयभीत थे कि यह तो आग के साथ खिलवाड़ करना है। कृष्ण उनके स्वामी हैं और कौतुक के लिए उन्होंने कृष्ण के बछड़ों तथा मित्रों को चुराकर शैतानी की है। वे सचमुच उत्सुक थे इसीलिए उन्होंने देरी नहीं की, अपने हिसाब से क्षण-भर बाद ही वे लौट आये। जब ब्रह्मा लौटे तो उन्होंने देखा कि सारे बालक, बछड़े और गौवें कृष्ण के साथ पूर्ववत् खेल रहे हैं। कृष्ण की योगमाया से वही क्रीड़ाएँ बिना किसी परिवर्तन के चल रही थीं।

जिस दिन ब्रह्मा पहले पहल आये थे उस दिन कृष्ण तथा ग्वालबालों के साथ बलराम नहीं जा सके क्योंकि उस दिन उनका जन्मदिन था और उनकी माता ने *शान्तिक स्नान* के लिए उन्हें घर पर रोक लिया था। इसलिए ब्रह्माजी बलराम को चुरा नहीं पाये थे। अब एक वर्ष बाद ब्रह्मा लौटे, तो यह भी ठीक वही दिन था अत: उस दिन भी बलराम अपनी वर्षगाँठ मनाने के लिए घर पर ही थे। इसीलिए इस श्लोक में यद्यपि उल्लेख है कि ब्रह्मा ने कृष्ण तथा ग्वालबालों को देखा किन्तु बलदेव का उल्लेख नहीं है। यह तो पाँच-छह दिन पूर्व की बात है कि बलदेव ने कृष्ण से गौवों तथा ग्वालों के विलक्षण

स्नेह के विषय में पूछा था किन्तु अब जब ब्रह्मा लौट कर आये तो उन्होंने कृष्ण के साथ सारे ग्वालों तथा बछड़ों को उनके अंशरूप में खेलते देखा किन्तु उन्होंने बलदेव को नहीं देखा। पिछले वर्ष की तरह भगवान् बलदेव उस दिन जंगल नहीं गये जब ब्रह्माजी फिर से वहाँ प्रकट हुए थे।

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यावन्तः—उतने ही; गोकुले—गोकुल में; बालाः—बालक; स-वत्साः—अपने अपने बछड़ों के साथ; सर्वे—सभी; एव—निस्सन्देह; हि—क्योंकि; माया-आशये—माया की सेज पर; शयानाः—सो रहे हैं; मे—मेरी; न—नहीं; अद्य—आज; अपि—भी; पुनः—फिर से; उत्थिताः—उठे हैं।

भगवान् ब्रह्मा ने सोचा: गोकुल के जितने भी बालक तथा बछड़े थे उन्हें मैंने अपनी योगशक्ति की सेज पर सुला रखा है और आज के दिन तक वे जगे नहीं हैं।

तात्पर्य : ब्रह्माजी ने अपनी योगशक्ति से सारे बछड़ों तथा बालकों को गुफा में एक वर्ष तक सुला रखा था। अत: जब ब्रह्मा ने अब भी भगवान् कृष्ण को सारी गौवों तथा बछड़ों के साथ खेलते देखा तो जो कुछ हो रहा था वे उसका कारण जानने का प्रयास करने लगे। उन्होंने सोचा, ''यह क्या है? हो सकता है कि मैं जिन बछड़ों तथा ग्वालों को चुरा ले गया था वे ही गुफा से पुन: यहाँ पर ला दिये गये हों। क्या ऐसा ही हुआ है? क्या कृष्ण उन्हें वापस ले आया है?'' किन्तु फिर ब्रह्माजी ने देखा कि जिन बछड़ों तथा बालकों को वे चुरा ले गये थे वे अब भी उसी योगमाया में हैं जिनमें उन्हें रखा गया था। अत: उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण के साथ अब खेल रहे बछड़े तथा ग्वालबाल गुफा वाले बछड़ों तथा बालकों से भिन्न हैं। वे समझ गये कि असली बछड़े तथा बालक गुफा में ही हैं जहाँ वे उन्हें रख आये थे किन्तु कृष्ण ने अपना विस्तार कर लिया है और सामने दिखने वाले ये बछड़े तथा बालक उन्हीं के अंश हैं। इन अंशों के वैसे ही स्वरूप थे, वही प्रवृत्ति और वही विचारधारा थी किन्तु थे वे भी कृष्ण ही।

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

इतः—इस कारण से; एते—अपने अपने बछड़ों समेत ये सारे बालक; अत्र—यहाँ पर; कुत्रत्याः—कहाँ से आये हैं; मत्-माया-मोहित-इतरे—मेरी माया से मोहित हुओं के अतिरिक्त; तावन्तः—उतने ही बालक; एव—निस्सन्देह; तत्र—वहाँ पर; आ-अब्दम्—एक वर्ष तक; क्रीडन्तः—खेल रहे हैं; विष्णुना समम्—कृष्ण के साथ।

यद्यपि पूरे एक वर्ष तक कृष्ण के साथ उतने ही बालक तथा बछड़े खेलते रहे फिर भी ये मेरी योगशक्ति से मोहित बालकों से भिन्न हैं। ये कौन हैं? ये कहाँ से आये?

तात्पर्य : यद्यपि वे बछड़ों, गौवों तथा ग्वालबालों जैसे लग रहे थे किन्तु वे सभी विष्णु थे। वस्तुत: वे *विष्णुतत्त्व* थे, *जीवतत्त्व* नहीं थे। ब्रह्मा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, ''असली बालक तथा गौवें तो अब भी वहीं हैं जहाँ उन्हें मैंने पिछले वर्ष रखा था। तो फिर वह कौन है, जो पूर्ववत् कृष्ण के साथ हैं? वे कहाँ से आये?'' ब्रह्मा को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी योगशक्ति की उपेक्षा हुई है। कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा ले जाई गई गौवों तथा बालकों को बिना छुये ही बछड़ों तथा बालकों की दूसरी पूरी टोली उत्पन्न कर दी है, जो विष्णुतत्त्व के अंश हैं। इस तरह ब्रह्मा की योगशक्ति परास्त हुई।

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; एतेषु भेदेषु—इन बालकों के बीच, जो पृथक् विद्यमान हैं; चिरम्—दीर्घकाल तक; ध्यात्वा—सोच कर; सः—वह; आत्म-भूः—ब्रह्मा; सत्याः—असली; के—कौन; कतरे—कौन; न—नहीं हैं; इति—इस प्रकार; ज्ञातुम्—जानने के लिए; न—नहीं; इष्टे—समर्थ था; कथञ्चन—किसी भी तरह से।

इस तरह दीर्घकाल तक विचार करते करते भगवान् ब्रह्मा ने उन दो प्रकार के बालकों में अन्तर जानने का प्रयास किया जो एक-दूसरे से पृथक् रह रहे थे। वे यह जानने का प्रयास करते रहे कि कौन असली है और कौन नकली है किन्तु वे कुछ भी नहीं समझ पाये।

तात्पर्य : ब्रह्मा किंकर्तव्यविमूढ़ थे। उन्होंने सोचा, ''असली लड़के तथा बछड़े तो वैसे ही सो रहे हैं जिस तरह मैंने उन्हें रखा था किन्तु कृष्ण के साथ यहाँ दूसरा समूह खेल रहा है। यह कैसे हुआ?'' ब्रह्मा समझ नहीं पाये कि क्या हो रहा है। कौन से बालक असली हैं और कौन से नकली हैं? ब्रह्मा किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे थे। वे इस विषय पर दीर्घकाल तक मनन करते रहे—''बछड़ों तथा बालकों के एक ही समय दो समूह कैसे हो सकते हैं? क्या कृष्ण ने इन बालकों तथा बछड़ों को उत्पन्न किया है? या जो सोये हुए हैं उन्हें कृष्ण ने उत्पन्न किया है? या दोनों ही कृष्ण की सृष्टियाँ हैं?'' ब्रह्मा ने इस विषय पर कई प्रकार से सोचा। ''यदि मैं गुफा जाकर यह देखूँ कि बालक

तथा बछड़े वहाँ अब भी हैं, तो क्या कृष्ण वहाँ जाकर उन सबों को यहाँ लाकर रख देंगे जिससे मैं उन्हें यहाँ देख सकूँ और पुन: उन्हें यहाँ से वहाँ रख आयेंगे?'' ब्रह्मा यह पता नहीं लगा पाये कि एक-जैसे बालकों तथा बछड़ों के एक ही साथ दो समूह कैसे सम्भव हैं। यद्यपि वे सोचते रहे, सोचते रहे किन्तु वे कुछ भी न समझ पाये।

एवं सम्मोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव मायायाजोऽपि स्वयमेव विमोहित: ॥ ४४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; सम्मोहयन्—मोहित करने की इच्छा से; विष्णुम्—सर्वव्यापी भगवान् कृष्ण को; विमोहम्—जो कभी मोहित नहीं किये जा सकते; विश्व-मोहनम्—किन्तु जो सारे ब्रह्माण्ड को मोहित करने वाले हैं; स्वया—अपने ही द्वारा; एव—निस्सन्देह; मायया—योगशक्ति द्वारा; अज:—ब्रह्मा; अपि—भी; स्वयम्—स्वयं; एव—निश्चय ही; विमोहित:—मोहित हो गये।

चूँकि ब्रह्मा ने सर्वव्यापी भगवान् कृष्ण को, जो कभी मोहित नहीं किये जा सकते अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहित करने वाले हैं, मोहित करना चाहा इसलिए वे स्वयं ही अपनी योगशक्ति द्वारा मोह में फँस गये।

तात्पर्य : ब्रह्मा ने उन कृष्ण को मोहित करना चाहा जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मोहित करते हैं। सारा ब्रह्माण्ड कृष्ण की योगशक्ति के अधीन है (*मम माया दुरत्यया*) किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें ही मोहित करना चाहा। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मा स्वयं मोहित हो गये जिस तरह कि किसी अन्य को मारने का इच्छुक व्यक्ति स्वयं मार डाला जाय। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मा अपनी ही चाल से पराजित हो गये। ऐसी ही स्थिति उन वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों की है, जो कृष्ण की योगशक्ति पर विजय पाना चाहते हैं। वे यह कह कर कृष्ण को ललकारते हैं, ''ईश्वर क्या है? हम यह कर सकते हैं, हम वह कर सकते हैं।'' किन्तु वे जितना ही अधिक कृष्ण को ललकारते हैं उतना ही अधिक कष्ट पाते हैं। हमें यहाँ यही शिक्षा मिलती है कि हम कृष्ण को पछाड़ने का प्रयत्न न करें। उन्हें पछाड़ने का प्रयास करने के बजाय हम उनकी शरण में जाँय (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*)।

ब्रह्मा चाहते थे कृष्ण को हराना किन्तु स्वयं हार गये क्योंकि वे यह नहीं जान पाये कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। जब इस ब्रह्माण्ड के मुख्य पुरुष ब्रह्मा इस तरह मोहित हों तो फिर तथाकथित वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों के विषय में क्या कहा जाये? *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* हमें चाहिए कि कृष्ण की व्यवस्था की अवज्ञा करने वाले अपने लघु प्रयासों को हम त्याग दें। हमें चाहिए कि वे जैसी

व्यवस्था करें उसे हम स्वीकार कर लें। यह सदैव श्रेयस्कर होता है क्योंकि इससे हम सुखी बन सकेंगे। हम उनकी व्यवस्था को पराजित करने का जितना ही अधिक प्रयास करेंगे उतना ही अधिक कृष्ण की माया में फँसते जायेंगे (*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*) किन्तु जो व्यक्ति भगवान् कृष्ण के आदेशों को मान कर शरण में जाते हैं (*मामेव ये प्रपद्यन्ते*) वे *कृष्ण-माया* से छूट जाते हैं (*मायाम् एतां तरन्ति ते*)। कृष्ण की शक्ति उस सरकारी शक्ति के समान है, जिसे जीता नहीं जा सकता। सर्वप्रथम सरकार के नियम होते हैं, तब पुलिस बल होता है और उसके ऊपर सैन्य बल होता है। अतएव सरकारी बल को पराजित करने से क्या लाभ? इसी तरह कृष्ण को ललकारने से क्या लाभ?

अगले श्लोक से स्पष्ट हो जायेगा कि कृष्ण को किसी भी प्रकार की माया-शक्ति से पराजित नहीं किया जा सकता। यदि किसी को थोड़ी भी वैज्ञानिक ज्ञान की शक्ति प्राप्त हो जाती है, तो वह ईश्वर की अवज्ञा करने का प्रयत्न करता है किन्तु कृष्ण को मोहित करने में कोई भी समर्थ नहीं होता। जब इस ब्रह्माण्ड के प्रधान पुरुष ब्रह्मा ने कृष्ण को मोहित करना चाहा तो वे स्वयं मोहित और आश्चर्यचकित हो गये। बद्धजीव की स्थिति ऐसी ही है। ब्रह्मा कृष्ण को मोहित करने चले तो स्वयं मोहित हो गये।

इस श्लोक में *विष्णु* शब्द महत्त्वपूर्ण है। विष्णु सम्पूर्ण भौतिक संसार में व्याप्त हैं किन्तु ब्रह्मा उनके अधीन एक पद पर नियुक्त हैं।

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य

जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ॥

(*ब्रह्म-संहिता* ५.४८)

नाथाः शब्द ब्रह्माजी के लिए आया है किन्तु है बहुवचन में क्योंकि ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और ब्रह्मा भी असंख्य हैं। ब्रह्मा तो एक क्षुद्र शक्ति मात्र हैं। इस तथ्य का प्राकट्य द्वारका में हुआ था जब कृष्ण ने ब्रह्मा को बुला भेजा था। एक दिन जबब्रह्मा कृष्ण का दर्शन करने द्वारका आये तो द्वारपाल ने भगवान् कृष्ण के आदेश से यह पूछा, ''आप कौन से ब्रह्मा हैं?'' बाद में जब ब्रह्मा ने कृष्ण से पूछा कि क्या इसका अर्थ यह है कि हमारे अतिरिक्त और भी ब्रह्मा हैं, तो कृष्ण मुसकाये और तुरन्त ही अनेक

ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्माओं को बुला भेजा। तब इस ब्रह्माण्ड के चतुरानन ब्रह्मा ने कृष्ण के पास असंख्य अन्य ब्रह्माओं को आते और कृष्ण को नमस्कार करते देखा। उनमें से कुछ के दस सिर थे, किसी के बीस, किसी के सौ और किसी के लाख लाख। यह अद्‌भुत दृश्य देख कर चतुरानन ब्रह्मा शिथिल हो गये और अपने को अनेक हाथियों के बीच में एक क्षुद्र मच्छर के बराबर समझने लगे। अत: ब्रह्मा कृष्ण को मोहित करके क्या कर सकते हैं ?

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

तम्याम्—अँधेरी रात में; तमः-वत्—अंधकार के समान; नैहारम्—बर्फ से उत्पन्न; खद्योत-अर्चिः—जुगनू का प्रकाश; इव—सदृश; अहनि—दिन के समय, सूर्य-प्रकाश में; महति—महापुरुष में; इतर-माया—अपरा शक्ति; ऐश्यम्—सामर्थ्य; निहन्ति—नष्ट करती है; आत्मनि—अपने को; युञ्जतः—प्रयोग करने वाले व्यक्ति को।

जिस तरह अँधेरी रात में बर्फ का अँधेरा तथा दिन के समय जुगनू के प्रकाश का कोई महत्व नहीं होता, उसी तरह निकृष्ट व्यक्ति की योगशक्ति महान् शक्तिशाली व्यक्ति के विरुद्ध प्रयोग किये जाने पर कुछ भी नहीं कर पाती, उलटे उस निकृष्ट व्यक्ति की शक्ति कम हो जाती है।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ शक्तिशाली को पछाड़ना चाहता है, तो उस निकृष्ट की अपनी शक्ति उपहासास्पद बन जाती है। जिस तरह दिन में जुगनू तथा रात में बर्फ का कोई मूल्य नहीं होता, उसी तरह कृष्ण के सामने ब्रह्मा की योगशक्ति व्यर्थ हो गई क्योंकि महान् योगशक्ति क्षुद्र योगशक्ति को व्यर्थ कर देती है। अँधेरी रात में बर्फ से उत्पन्न अँधेरे का कोई अर्थ नहीं होता। रात में तो जुगनू अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहता है किन्तु दिन में उसके प्रकाश का कोई मूल्य नहीं रहता—इसका रहा-सहा मूल्य भी जाता रहता है। उसी तरह कृष्ण की योगशक्ति के समक्ष ब्रह्मा प्रभावहीन हो गये। कृष्ण की माया का तो महत्त्व नहीं घटा किन्तु ब्रह्मा की माया उपहासास्पद बन गई। इसलिए महान् शक्ति के समक्ष अपना क्षुद्र ऐश्वर्य प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—इतने लम्बे समय से; सर्वे—सभी; वत्स-पालाः—बछड़े तथा उन्हें चराने वाले बालक दोनों ही; पश्यतः—देखते हुए; अजस्य—ब्रह्मा के; तत्-क्षणात्—तुरन्त; व्यदृश्यन्त—दिखलाई पड़े; घन-श्यामाः—श्याम बादलों के स्वरूप वाले; पीत-कौशेय-वाससः—पीला रेशमी वस्त्र पहने हुए।

जब ब्रह्मा देख रहे थे तो तुरन्त ही सारे बछड़े तथा उन्हें चराने वाले बालक नीले बादलों के रंग वाले स्वरूप में पीले रेशमी वस्त्र पहने हुए प्रकट होने लगे।

तात्पर्य : जब ब्रह्मा मनन कर रहे थे तो सारे बछड़े तथा बालक तुरन्त ही *विष्णु मूर्तियों* में बदल गये। उनकी आकृतियाँ नीले रंग की थीं और वे पीले वस्त्र पहने थे। ब्रह्मा अपनी शक्ति तथा कृष्ण की अत्यधिक असीम शक्ति के विषय में सोच-विचार कर रहे थे किन्तु कोई भी निर्णय कर पाने के पूर्व उन्होंने यह अविलम्ब रूपान्तर देखा।

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७॥
श्रीवत्साङ्ग्ददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

चतुः-भुजाः—चार भुजाओं वाले; शङ्ख-चक्र-गदा-राजीव-पाण-यः—अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल का फूल धारण किये; किरीटिनः—अपने सिरों पर मुकुट पहने; कुण्डलिनः—कानों में कुण्डल पहने; हारिणः—मोती के हार पहने; वन-मालिनः—जंगल के फूलों की मालाएँ पहने; श्रीवत्स-अङ्गद-दो-रत्न-कम्बु-कङ्कण-पाणयः—अपने वक्षस्थलों में लक्ष्मी का चिह्न, भुजाओं में बाजूबन्द, गलों में कौस्तुभ मणि, जिसमें शंख जैसी तीन रेखाएँ अंकित थीं तथा हाथों में कंगन पहने हुए; नूपुरैः—पाँवों में घुंघुरू से युक्त; कटकैः—टखनों में चूड़ों से युक्त; भाताः—सुन्दर लग रहे थे; कटि-सूत्र-अङ्गुली-यकैः—कमर में पवित्र करधनी तथा अंगुलियों में अँगूठियों समेत।

इन सबों के चार हाथ थे जिनमें शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये थे। वे अपने सिरों पर मुकुट पहने थे, उनके कानों में कुंडल और गलों में जंगली फूलों के हार थे। उनके वक्षस्थलों के दाहिनी ओर के ऊपरी भाग में लक्ष्मी का चिन्ह था। वे अपनी बाहों में बाजूबन्द, शंख जैसी तीन रेखाओं से अंकित गलों में कौस्तुभ मणि तथा कलाइयों में कंगन पहने थे। उनके टखनों में पायजेब थीं, पाँवों में आभूषण और कमर में पवित्र करधनी थी। वे सभी अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

तात्पर्य : सभी विष्णु रूपों के चार हाथ थे जिनमें शंख, चक्र आदि थे किन्तु ये लक्षण उनमें भी पाये जाते हैं जिन्होंने वैकुण्ठ में सारूप्य मुक्ति प्राप्त की है और जिनके रूप भगवान् जैसे ही हैं। किन्तु ब्रह्मा के समक्ष विष्णु के जो रूप प्रकट हुए थे उनमें श्रीवत्स का चिह्न तथा कौस्तुभ मणि भी थे, जो

केवल भगवान् के विशेष लक्षण हैं। इससे सिद्ध है कि ये सारे बालक तथा बछड़े यथार्थ में भगवान् विष्णु के अंश थे, केवल उनके वैकुण्ठ संगी नहीं। विष्णु स्वयं कृष्ण में समाहित हैं। विष्णु के सारे ऐश्वर्य कृष्ण में पहले से विद्यमान हैं फलत: इतने विष्णु-रूपों का प्रदर्शन कृष्ण के लिए कोई आश्चर्यजनक कार्य नहीं था।

वैष्णव तोषणी में श्रीवत्स चिह्न को भगवान् विष्णु के वक्षस्थल की दाहिनी ओर के ऊपरी भाग में सुन्दर पीले बालों का छल्ला (कुंचन) बतलाया गया है। यह चिह्न साधारण भक्तों के लिए नहीं है। यह विष्णु या कृष्ण का विशेष चिह्न है।

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभि: ।
कोमलै: सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितै: ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

आ-अङ्घ्रि-मस्तकम्—पाँव से लेकर सिर तक; आपूर्णा:—पूरी तरह सजा; तुलसी-नव-दामभि:—तुलसी की ताजी पत्तियों से बने हारों से; कोमलै:—कोमल; सर्व-गात्रेषु—पूरे शरीर में; भूरि-पुण्यवत्-अर्पितै:—पुण्यकर्मों में लगे भक्तों द्वारा अर्पित किये गये।

पाँव से लेकर सिर तक उनके शरीर के सारे अंग तुलसी दल से बने ताजे मुलायम हारों से पूरी तरह सज्जित थे जिन्हें पुण्यकर्मों (श्रवण तथा कीर्तन) द्वारा भगवान् की पूजा में लगे भक्तों ने अर्पित किया था।

तात्पर्य : *भूरि-पुण्यवद्-अर्पितै*—यह इस श्लोक का महत्त्वपूर्ण पद है। विष्णु के इन रूपों की पूजा उन भक्तों द्वारा की गई थी जिन्होंने अनेक जन्मों तक पुण्यकर्म (*सुकृतिभि:*) किये थे और जो भक्ति में निरन्तर लगे हुए थे (*श्रवणं कीर्तनं विष्णो:*)। भक्ति उन लोगों द्वारा की जाती है जिन्होंने अत्यन्त उच्च कोटि के पुण्यकर्म किये हों। *श्रीमद्भागवत* में अन्यत्र भी (१०.१२.११) पुण्यकर्मों के संचय का उल्लेख हुआ है जहाँ शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

इत्थं सतां ब्रह्मसखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रु: कृतपुण्यपुञ्जा: ॥

"जो लोग भगवान् के ब्रह्मतेज की अनुभूति करते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हैं और जो लोग

भगवान् को स्वामी मान कर भक्ति में लगे हुए हैं तथा वे लोग जो भगवान् को सामान्य व्यक्ति मानते हुए माया के वशीभूत हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि पुण्यकर्म संचित किये हुए ऐसे कुछ महापुरुष हैं, जो भगवान् के साथ ग्वालबालों के रूप में मित्र बनकर खेल रहे हैं।''

वृन्दावन के हमारे कृष्ण-बलराम मन्दिर में एक तमाल वृक्ष है, जो आँगन के पूरे एक कोने में छाया हुआ है। जब तक मन्दिर नहीं बना था, यह वृक्ष उपेक्षित रहता था किन्तु अब इसकी इतनी बाढ़ हो गई है कि इसने आँगन के पूरे कोने को घेर लिया है। यह *भूरिपुण्य* कहलाता है।

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।
स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

चन्द्रिका-विशद-स्मेरैः—पूर्ण वर्द्धमान चन्द्रमा की तरह शुद्ध मुसकान से; स-अरुण-अपाङ्ग-वीक्षितैः—अपनी लाल-लाल आँखों की स्वच्छ चितवन से; स्वक-अर्थानाम्—अपने भक्तों की इच्छाओं के; इव—सदृश; रजः-सत्त्वाभ्याम्—रजो तथा सतो गुणों से; स्रष्टृ-पालकाः—स्रष्टा तथा पालनकर्ता थे।

वे विष्णु रूप जो चंद्रमा के बढ़ते हुए प्रकाश के तुल्य थे, अपनी शुद्ध मुस्कान तथा अपनी लाल-लाल आँखों की तिरछी चितवन के द्वारा, अपने भक्तों की इच्छाओं को, मानो रजोगुण एवं तमोगुण से, उत्पन्न करते तथा पालते थे।

तात्पर्य : ये विष्णुस्वरूप पूर्ण चन्द्रमा के बढ़ते हुए प्रकाश के समान अपनी निर्मल कटाक्षों तथा मुसकानों से भक्तों को आशीर्वाद दे रहे थे (*श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणम्*)। पालनकर्ताओं के रूप में वे अपने भक्तों पर कटाक्ष कर रहे थे और उनका आलिंगन कर रहे थे और अपनी मुसकान से उनकी रक्षा कर रहे थे। उनकी हँसी सतो गुण के तुल्य भक्तों की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली थी और उनके कटाक्ष रजोगुण के समान थे। वस्तुतः इस श्लोक में आया हुआ *रजः* शब्द ''काम'' का नहीं अपितु ''स्नेह'' का सूचक है। भौतिक जगत में रजोगुण काम का सूचक है किन्तु आध्यात्मिक जगत में यही स्नेह होता है। भौतिक जगत में रजोगुण तथा तमोगुण से स्नेह कलुषित होता है किन्तु *शुद्ध सत्त्व* में भक्तों को पालन करने वाला स्नेह दिव्य होता है।

स्वकार्थानाम् सूचक है महती इच्छाओं का। जैसाकि इस श्लोक में उल्लेख है, भगवान् विष्णु की चितवन भक्तों में इच्छाओं को उत्पन्न करने वाली है। किन्तु शुद्ध भक्त में तो कोई इच्छा ही नहीं रहती। इसीलिए सनातन गोस्वामी की टीका है कि जिन भक्तों का ध्यान कृष्ण में लगा है ऐसे भक्तों की

इच्छाएँ पहले से पूरी हुई रहती हैं। अत: उनमें भगवान् के कटाक्षों से कृष्ण तथा भक्ति के प्रति तरह-तरह की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। भौतिक जगत में इच्छा तो रजोगुण तथा तमोगुण की उपज होती है किन्तु आध्यात्मिक जगत में इच्छा से तरह-तरह की शाश्वत दिव्य भक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार *स्वकार्थानाम्* शब्द कृष्ण की सेवा करने की उत्सुकता को प्रदर्शित करता है।

वृन्दावन में एक स्थान है जहाँ पर कोई मन्दिर नहीं था किन्तु एक भक्त ने चाहा कि यहाँ एक मन्दिर हो जाय और सेवा हो। अतएव जो कभी वीरान स्थान था वही अब तीर्थस्थान बन गया है। भक्तों की इच्छाएँ ऐसी ही होती हैं।

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

आत्म-आदि-स्तम्ब-पर्यन्तैः—ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र जीव तक; मूर्ति-मद्भिः—वही रूप धारण करके; चर-अचरैः—चल तथा अचल प्राणियों द्वारा; नृत्य-गीत-आदि-अनेक-अर्हैः—पूजा के विविध साधनों द्वारा, यथा नाच और गाने से; पृथक् पृथक्—अलग अलग; उपासिताः—पूजित होकर।

चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र से क्षुद्र जीव, चाहे वे चर हों या अचर, सबों ने स्वरूप प्राप्त कर रखा था और वे अपनी अपनी क्षमताओं के अनुसार नाच तथा गायन जैसी पूजा विधियों से उन विष्णु मूर्तियों की अलग अलग पूजा कर रहे थे।

तात्पर्य : असंख्य जीव अपनी अपनी शक्तियों तथा कर्म के अनुसार पुरुषोत्तम की विभिन्न प्रकार की उपासना में लगे हुए हैं—हर प्राणी व्यस्त है (*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर नित्यदास*)। कोई ऐसा नहीं मिलेगा जो सेवा न कर रहा हो। इसलिए जो *महाभागवत* है, वह हर एक को कृष्ण-भक्ति में लगा हुआ देखता है—केवल अपने को ही वह उसमें नहीं लगा हुआ पाता। हमें अपने को निम्न पद से उच्च पद तक उठाना होगा और उच्च पद वह है, जिसमें वृन्दावन में प्रत्यक्ष सेवा की जाती है। लेकिन हर व्यक्ति सेवा में लगा हुआ है। भगवान् की सेवा का निषेध करना ही *माया* है।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।
यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य॥

"केवल कृष्ण सर्वोच्च प्रभु हैं, शेष सभी लोग उनके दास हैं। कृष्ण जैसा चाहते हैं उसी के अनुसार हर व्यक्ति नाचता है।" (*चैतन्य चरितामृत आदि* ५.१४२)।

जीव दो प्रकार के हैं—चर तथा अचर। उदाहरणार्थ, वृक्ष एक स्थान पर खड़े रहते हैं जबकि चींटियाँ चलती-फिरती हैं। ब्रह्मा ने देखा कि क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी विभिन्न रूप धारण करके भगवान् विष्णु की सेवा में लगे हुए हैं।

जो जिस विधि से भगवान् की पूजा करता है, उसी के अनुसार उसे रूप मिलता है। भौतिक जगत में जीव को जो शरीर मिलता है, वह देवताओं द्वारा नियंत्रित होता है। इसी को कभी कभी नक्षत्रों का प्रभाव कहा जाता है। *भगवद्गीता* (३.२७) में इसे ही *प्रकृते: क्रियमाणानि* शब्दों के द्वारा सूचित किया गया है, जिसका अर्थ है कि प्रकृति के नियमानुसार प्राणी का नियंत्रण देवताओं द्वारा होता है।

सारे जीव कृष्ण की सेवा विविध प्रकारों से करते हैं किन्तु जब वे कृष्णभावनाभावित रहते हैं, तो उनकी सेवा पूरी तरह प्रकट होती है। जिस प्रकार कली में छिपा फूल क्रमश: खिल कर अपनी सुगन्ध तथा सुन्दरता बिखेरता है उसी तरह जब जीव कृष्णभावनामृत पद तक पहुँच जाता है, तो उसके असली स्वरूप का सौन्दर्य पूरी तरह खिल उठता है। यही चरम सौन्दर्य तथा चरम इच्छापूर्ति है।

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभि: ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वै: परीता महदादिभि: ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अणिमा-आद्यै:—अणिमा इत्यादि; महिमभि:—महिमा आदि; अजा-आद्याभि:—अजा आदि; विभूतिभि:—शक्तियों से; चतु:-विंशतिभि:—चौबीस; तत्त्वै:—जगत की सृष्टि के तत्त्वों द्वारा; परीता:—(सारी विष्णु मूर्तियाँ) घिरी हुई; महत्-आदिभि:—महत् तत्त्व इत्यादि से।

वे सारी विष्णु मूर्तियाँ अणिमा इत्यादि सिद्धियों, अजा इत्यादि योगसिद्धियों तथा महत तत्त्व आदि सृष्टि के २४ तत्त्वों से घिरी हुई थीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में आये *महिमभि:* शब्द का अर्थ *ऐश्वर्य* है। भगवान् जो चाहे सो कर सकता है। यही उसका ऐश्वर्य है। उस पर कोई आज्ञा नहीं चला सकता है किन्तु वह हर एक को आज्ञा दे सकता है। *षड्ऐश्वर्य पूर्णम्*—भगवान् छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं। योगसिद्धियाँ—जिनके अन्तर्गत अणिमा या महिमा सिद्धि आती हैं विष्णु में उपस्थित रहती हैं। *षड् ऐश्वर्यै पूर्णो य इह भगवान्* (*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.३)। *अजा* का अर्थ है माया। समस्त मायामय वस्तुएँ विष्णु में निहित होती हैं।

जिन २४ तत्त्वों का उल्लेख हुआ है वे हैं—पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, मन, अहंकार, महत् तत्त्व तथा प्रकृति। इस भौतिक जगत की अभिव्यक्ति में इन सारे चौबीस

तत्त्वों का प्रयोग हुआ है। महत् तत्त्व के भी विभिन्न सूक्ष्म विभाग किये जाते हैं किन्तु मूल रूप से इसे महत् तत्त्व कहा जाता है।

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

काल—समय; स्वभाव—स्वभाव; संस्कार—संस्कार; काम—इच्छा; कर्म—सकाम कर्म; गुण—तीन गुण; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; स्व-महि-ध्वस्त-महिभिः—जिसकी स्वतंत्रता भगवान् की शक्ति के अधीन थी; मूर्ति-मद्भिः—स्वरूप वाली; उपासिताः—पूजित हो रहे थे।

तब भगवान् ब्रह्मा ने देखा कि काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म तथा गुण—ये सभी अपनी स्वतंत्रता खो कर पूर्णतया भगवान् की शक्ति के अधीन होकर स्वरूप धारण किये हुए थे और उन विष्णु मूर्तियों की पूजा कर रहे थे।

तात्पर्य : केवल विष्णु को स्वतंत्रता प्राप्त है। यदि हममें यह चेतना जागृत हो सके तो हम यथार्थ में कृष्णभावनाभावित हैं। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि कृष्ण ही एकमात्र परम स्वामी हैं और अन्य हर व्यक्ति उनका दास है (*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*)। चाहे कोई नारायण हो या शिवजी, प्रत्येक जीव कृष्ण के अधीन है (*शिवविरिञ्चिनुतम्*)। यहाँ तक कि बलदेव भी कृष्ण के अधीन हैं। यह तथ्य है।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।
यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य॥

(*चैतन्य-चरितामृत आदि* ५.१४२)

मनुष्य को यह समझना चाहिए कि कोई भी स्वतंत्र नहीं है क्योंकि हर कोई कृष्ण का अंश है और कृष्ण की इच्छानुसार काम करता और चलता-फिरता है। यही समझ या चेतना कृष्णभावनामृत है।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतै।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

''जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है, वह निश्चित रूप से अपराधी समझा जाना चाहिए।'' नारायण या कृष्ण की समता कोई भी नहीं कर सकता। कृष्ण ही नारायण हैं और नारायण ही कृष्ण हैं क्योंकि कृष्ण आदि नारायण हैं। कृष्ण को स्वयंब्रह्म *नारायणस्त्वं*

न हि सर्वदेहिनाम् कह कर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है कि तुम नारायण भी हो, तुम्हीं आदि नारायण हो (*भागवत* १०.१४.१४)।

काल के अनेक सहायक हैं यथा स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म तथा गुण। *स्वभाव* भौतिक गुणों के मेल के अनुसार बनता है। *कारणं गुण-संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। *सत्* तथा *असत्* स्वभाव का निर्माण विभिन्न गुणों—सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमो गुण—के मेल से होता है। हमें क्रमश: सत्त्व गुण प्राप्त करना चाहिए जिससे दो निम्न गुणों से बचा जा सके। यदि हम श्रीमद्भागवत का नित्य मनन करें और कृष्ण के कार्यकलापों को सुनें तो ऐसा हो सकता है। *नष्ट प्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया* (*भागवत* १.२.१८)। *श्रीमद्भागवत* में वर्णित कृष्ण की पूतना सम्बन्धी लीला से लेकर सारी लीलाएँ दिव्य हैं। अतएव *श्रीमद्भागवत* पर विचार-विमर्श करने तथा इसका श्रवण करने से रजो तथा तमो गुणों का दमन हो जाता है और एकमात्र सत्त्वगुण बच रहता है। तब रजो तथा तमोगुण हमें हानि नहीं पहुँचा पाते।

इसीलिए *वर्णाश्रम धर्म* अनिवार्य है क्योंकि इससे लोग सत्त्व गुण प्राप्त कर सकते हैं। *तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये* (*भागवत* १.२.१९)। तमोगुण तथा रजोगुण काम तथा लोभ को बढ़ाने वाले हैं जिससे जीव इस तरह बँध जाता है कि उसे अनेकानेक रूपों में इस जगत में रहना पड़ता है। यह बहुत ही घातक है। इसलिए वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करके मनुष्य को सत्त्व गुण प्राप्त कराना होगा। उसमें शुद्ध तथा स्वच्छ रहने, प्रात:काल जल्दी उठने तथा मंगल आरात्रिक देखने जैसे ब्राह्मण-गुणों को विकसित करना होगा। इस तरह सत्त्व गुण प्राप्त होने पर मनुष्य तमोगुण तथा रजोगुण द्वारा प्रभावित नहीं हो सकेगा।

तदा रजस्तमोभावा: कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥

(*भागवत* १.२.१९)

इस शुद्धि का सुअवसर मानव जीवन का विशेष अंग है, दूसरे जीवनों में यह सम्भव नहीं। ऐसी शुद्धि *राधा-कृष्ण भजन* द्वारा भी आसानी से प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—*हरि हरि विफले जन्म गँवाइनु*—जिसका अर्थ है कि जब तक राधा-कृष्ण की पूजा नहीं की

जाती यह मनुष्य-जीवन व्यर्थ हो जाता है। *वासुदेवे भगवति भक्ति-योग:प्रयोजित: ।जनयत्याशु वैराग्यम्* (*भागवत* १.२.७)। वासुदेव की सेवा में लगने पर मनुष्य को इस भौतिक जीवन से शीघ्र ही विरक्ति हो जाती है। उदाहरणार्थ, कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य वासुदेव-भक्ति में लगे रहने से तुरन्त ही अच्छे वैष्णव बन जाते हैं—यहाँ तक कि लोगों को यह देख कर आश्चर्य होता है कि म्लेच्छ तथा यवन इस अवस्था को प्राप्त हो सके हैं। यह वासुदेव-भक्ति से सम्भव है। किन्तु यदि हम इस मनुष्य जीवन में सत्त्व गुण प्राप्त नहीं कर पाते तो जैसाकि नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं—*हरि हरि विफले जन्म गँवाइनु*—तो इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं है।

श्री वीरराघव आचार्य की टीका है कि इस श्लोक के प्रथम पद में उल्लिखित एक एक बात भवबन्धन की कारण है। काल प्रकृति के गुणों को क्षुब्ध करता है और स्वभाव इन गुणों के मेल का प्रतिफल होता है। इसलिए नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं— *भक्तसने वास।* यदि भक्तों की संगति की जाती है, तो मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को सत्संगति प्रदान करने के हेतु है, जिससे यह परिवर्तन आ सके और हम देख रहे हैं कि इस विधि से सारे विश्व के लोग धीरे-धीरे भक्त बन रहे हैं।

जहाँ तक *संस्कार* का सम्बन्ध है यह अच्छी संगति से संभव है, क्योंकि अच्छी संगति से अच्छी आदतें बनती हैं और आदत ही द्वितीय स्वभाव बन जाती है। इसलिए *भक्तसने वास*—लोगों को भक्तों के साथ रहने का अवसर मिलना चाहिए। तभी उनकी आदतें बदलेंगी। मनुष्य जीवन में यह अवसर मिलता है किन्तु नरोत्तमदास ठाकुर गाते हैं—*हरि हरि विफले जनम गँवाइनु*—यदि लोग इस अवसर का लाभ उठाने में विफल रहते हैं, तो उनका मनुष्य-जीवन व्यर्थ जाता है। इसलिए मानव समाज को नीचे जाने से बचाने का और लोगों को वास्तव में ऊपर उठाने का हम प्रयास कर रहे हैं।

जहाँ तक काम तथा कर्म की बात है, यदि मनुष्य अपने को भक्ति में लगाता है, तो उसका स्वभाव इन्द्रिय-भोग में अपने को लगाने से बने स्वभाव की अपेक्षा भिन्न होता है। इसका परिणाम भी निस्संदेह भिन्न होता है। मनुष्य को विभिन्न स्वभावों की संगति के अनुसार ही विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है। *कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु* (*भगवद्गीता* १३.२२)। इसलिए हमें अच्छी संगति—भक्तों की संगति—खोजनी चाहिए। तभी हमारा जीवन सार्थक होगा। मनुष्य की पहचान उसकी संगति से

होती है। यदि मनुष्य को भक्तों की सत्संगति में रहने का अवसर मिलता है, तो वह ज्ञान का अनुशीलन करने में समर्थ होता है और उसका चरित्र अथवा स्वभाव भी उसी के अनुसार उसके स्थायी लाभ के लिए बदल जाता है।

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४॥

शब्दार्थ

सत्य—शाश्वत; ज्ञान—ज्ञान से युक्त; अनन्त—असीम; आनन्द—आनन्द से पूर्ण; मात्र—केवल; एक-रस—सदैव स्थित; मूर्तयः—स्वरूप; अस्पृष्ट-भूरि-माहात्म्याः—जिसकी महती महिमा छू तक नहीं जाती; अपि—भी; हि—क्योंकि; उपनिषत्-दृशाम्—उपनिषदों का अध्ययन करने वाले ज्ञानियों द्वारा।

वे समस्त विष्णु मूर्तियाँ शाश्वत, असीम स्वरूपों वाली, ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण एवं काल के प्रभाव से परे थीं। उपनिषदों के अध्ययन में रत ज्ञानीजन भी उनकी महती महिमा का स्पर्श तक नहीं कर सकते थे।

तात्पर्य : केवल शास्त्र-ज्ञान से भगवान् को समझने में सहायता नहीं मिल सकती। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, वही उन्हें समझ पाता है। उपनिषदों में (*मुण्डक उपनिषद* ३.२.३) भी इसकी व्याख्या की गई है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधसा न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

''परमेश्वर की प्राप्ति न तो दक्ष व्याख्याओं द्वारा, न ही विशाल बुद्धि द्वारा न ही अधिक श्रवण करने से होती है। वे तो उसे प्राप्त होते हैं जिसे वे स्वयं चुनते हैं। ऐसे व्यक्ति को वे अपना स्वरूप प्रदर्शित करते हैं।''

ब्रह्म का एक वर्णन है—*सत्यं ब्रह्म, आनन्दरूपम्*—ब्रह्म परम सत्य तथा पूर्ण आनन्द है। यद्यपि विष्णु अर्थात् परब्रह्म के स्वरूप एक थे किन्तु वे भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त थे। किन्तु उपनिषदों के अनुयायी ब्रह्म द्वारा प्रकट नाना रूपों को नहीं समझ पाते। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्म तथा परमात्मा को केवल भक्ति द्वारा जाना जा सकता है, जिसकी पुष्टि भगवान् ने *श्रीमद्भागवत* (११.१४.२१) में की

है— *भक्त्याहमेकया ग्राह्यः।* ब्रह्म के दिव्य स्वरूप की स्थापना हेतु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर शास्त्रों से विविध उद्धरण देते हैं। *श्वेताश्वतर उपनिषद* (३.८) में ब्रह्म को *आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्*— जिनका स्वरूप सूर्य के समान ज्योतिमान तथा अज्ञान के अंधकार से परे है। *आनन्दमात्रम् अजरं पुराणमेकं सन्तं बहुधा दृश्यमानम्*—ब्रह्म आनन्दपूर्ण हैं, उनमें दुख का लेश नहीं। वे सबसे पुराने होकर भी कभी बूढ़े नहीं होते हैं और एक होते हुए भी अनेक रूपों में अनुभव किये जाते हैं *सर्वे नित्याः शाश्वताश् च देहास् तस्य परात्मानः।* उन परम पुरुष के सभी रूप शाश्वत हैं (*महावराह पुराण*)। परम पुरुष का रूप हाथ-पाँव आदि से युक्त होता है लेकिन उनके हाथ-पाँव भौतिक नहीं होते। भक्तगण जानते हैं कि ब्रह्म अथवा कृष्ण का स्वरूप रंच-भर भी भौतिक नहीं होता प्रत्युत ब्रह्म दिव्य स्वरूप वाले हैं और जब कोई व्यक्ति भक्तिपूर्वक उनमें लीन होता है तभी वह उन्हें समझ सकता है (*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन*)। किन्तु मायावादी इस दिव्य रूप को नहीं समझ सकते क्योंकि वे इसे भौतिक मानते हैं।

भगवान् के साकार दिव्य रूप इतने महान् हैं कि उपनिषदों के निर्विशेष अनुयायी उन्हें समझने के लिये ज्ञान के उस पद तक पहुँच नहीं सकते। विशेष रूप से भगवान् के दिव्य रूप उन निर्विशेषवादियों की पहुँच के परे होते हैं, जो उपनिषदों के अध्ययन के द्वारा इतना ही समझ पाते हैं कि परब्रह्म पदार्थ नहीं है और वह सीमित शक्ति द्वारा बँधा नहीं है।

यद्यपि कृष्ण का दर्शन उपनिषदों के माध्यम से नहीं किया जा सकता किन्तु कहीं कहीं ऐसा कहा गया है कि इस विधि से वस्तुतः कृष्ण को जाना जा सकता है। *औपनिषदं पुरुषम्*—वह उपनिषदों के द्वारा जाना जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक ज्ञान से शुद्ध होने पर मनुष्य को भक्ति ज्ञान में प्रविष्ट होने दिया जाता है (*मद्भक्तिं लभते पराम्*)।

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञान वैराग्ययुक्तया।

पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया॥

''एक जिज्ञासु अथवा मुनि, जो ज्ञान तथा वैराग्य से भलीभाँति युक्त होता है, वह परब्रह्म की अनुभूति वेदान्त श्रुति से सुनी हुई भक्ति करके करता है।'' (*भागवत* १.२.१२)। *श्रुतगृहीतया* सूचक है वेदान्त ज्ञान का, किसी भावना या अनुभूति का नहीं। *श्रुतगृहीत* गम्भीर ज्ञान होता है।

इस प्रकार ब्रह्मा को लगा कि भगवान् विष्णु सत्य, ज्ञान तथा आनन्द के आगार हैं। वे इन तीन दिव्य स्वरूपों से युक्त हैं और उपनिषदों के अनुयायियों के आराध्य हैं। ब्रह्मा ने अनुभव किया कि गौवों, बछड़ों तथा लड़कों को जो विष्णु रूप प्राप्त हुए हैं, वे किसी योगी या देवता में निहित विशेष शक्ति के प्रदर्शन नहीं हैं। विष्णु मूर्तियों के रूप में ये गौवें, बछड़े तथा बालक विष्णु-माया के प्रदर्शन न होकर साक्षात् विष्णु हैं। विष्णु तथा विष्णु माया के क्रमिक गुण अग्नि तथा उष्मा जैसे हैं। उष्मा में अग्नि का गुणहै किन्तु वह अग्नि नहीं है। बछड़ों, गौवों तथा बालकों के रूप में विष्णु स्वरूपों की अभिव्यक्ति उष्मा के तुल्य नहीं अपितु अग्नि के तुल्य थी—वे सचमुच विष्णु थे। यथार्थरूप में विष्णु तो सच्चिदानन्द विग्रह हैं। दूसरा उदाहरण भौतिक पदार्थों से दिया जा सकता है, जो कई रूपों में प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी तरह सूर्य अनेक जलपात्रों में प्रतिबिम्बित होता है किन्तु पात्रों में दिखने वाले प्रतिबिम्ब सूर्य नहीं होते। इन प्रतिबिम्बों में सूर्य का वास्तविक प्रकाश तथा उष्मा नहीं रहते यद्यपि यह सूर्य की भाँति ही दिखाई देता है। किन्तु कृष्ण ने जितने सारे स्वरूप धारण कर रखे थे वे सबके सब विष्णु थे।

हमें चाहिए कि यथासम्भव हम प्रतिदिन *श्रीमद्भागवत* के बारे में चर्चा करें जिससे हर बात स्पष्ट हो सके क्योंकि *भागवत* समस्त वैदिक वाङ्मय का सार है (*निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्*)। इसे व्यासदेव ने तब लिखा जब वे आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे (*महामुनिकृते*)। अत: हम *भागवत* का जितना ही अध्ययन करेंगे, ज्ञान उतना ही स्पष्ट होता जायेगा। इसका प्रत्येक श्लोक दिव्य है।

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सकृत्—एक ही साथ; ददर्श—देखा; अज:—ब्रह्मा ने; पर-ब्रह्म—परम सत्य के; आत्मन:—अंश; अखिलान्—सारे बछड़ों तथा बालकों को.; यस्य—जिसके; भासा—प्रकट होने से; सर्वम्—सभी; इदम्—यह; विभाति—व्यक्त है; स-चर-अचरम्—जो कुछ भी चर तथा अचर है।.

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा ने परब्रह्म को देखा जिसकी शक्ति से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सारे चर तथा अचर प्राणियों समेत व्यक्त होता है। उन्होंने उसी के साथ ही सारे बछड़ों तथा बालकों को भगवान् के अंशों के रूप में देखा।

तात्पर्य : इस घटना से ब्रह्माजी यह देख सके कि किस तरह कृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाना

प्रकार से भरण करते हैं। चूँकि वे हर वस्तु को प्रकट करते हैं इसलिए हर वस्तु दिखती है।

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अतिकुतुक-उद्वृत्य-स्तिमित-एकादश-इन्द्रियः—जिनकी ग्यारह इन्द्रियाँ आश्चर्य के कारण क्षुब्ध हो चुकी थीं और दिव्य आनन्द के कारण स्तम्भित हो गई थीं; तद्-धाम्ना—उन विष्णु मूर्तियों के तेज से; अभूत्—हो गया; अजः—ब्रह्मा; तूष्णीम्—मौन; पूः-देवी-अन्ति—ग्राम्य देवता की उपस्थिति में; इव—जिस तरह; पुत्रिका—बच्चे द्वारा बनाया गया मिट्टी का खिलौना।

तब उन विष्णु मूर्तियों की तेज शक्ति से ब्रह्मा की ग्यारहों इन्द्रियाँ आश्चर्य से क्षुब्ध तथा दिव्य आनन्द से स्तब्ध हो चुकी थीं अतः वे मौन हो गये मानो ग्राम्य देवता की उपस्थिति में किसी बच्चे की मिट्टी की बनी गुड़िया हो।

तात्पर्य : दिव्य आनन्द से ब्रह्मा स्तब्ध थे (*मुह्यन्ति यत् सूरयः*)। आश्चर्यचकित होने से उनकी सारी इन्द्रियाँ स्तब्ध हो गई थीं और वे कुछ भी कह पाने में असमर्थ थे। ब्रह्मा ने अपने आपको एकमात्र शक्तिमान देवता मान कर सर्वोच्च समझ रखा था किन्तु उनका वह गर्व अब चूर-चूर हो गया और वे पुनः मात्र एक देवता रह गये। अतः ब्रह्मा कभी ईश्वर—कृष्ण या नारायण—की समता नहीं कर सकते। नारायण की तुलना ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं से भी करना वर्जित है, तो अन्य देवताओं से तुलना तो की ही नहीं जा सकती।

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतै।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥

''जो व्यक्ति ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं को नारायण के समकक्ष मानता है उसे निस्संदेह अपराधी समझना चाहिए।'' हमें चाहिए कि नारायण की समता किसी देवता से न करें क्योंकि शंकराचार्य तक ने इसके लिए वर्जित किया है (*नारायणः परोऽव्यक्तात्*)। यही नहीं, वेदों में भी उल्लेख है—*एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानः*—सृष्टि के प्रारम्भ में केवल नारायण थे। ब्रह्मा या शिव का अस्तित्व तक न था—इसीलिए जो भी अपने जीवन के अन्त समय में नारायण का स्मरण करता है उसे जीवन-सिद्धि प्राप्त होती है (*अन्ते नारायणस्मृतिः*)।

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके
परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति
चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; इरा-ईशे—इरा अर्थात् सरस्वती के स्वामी, ब्रह्मा के; अतर्क्ये—परे; निज-महिमनि—अपनी महिमा; स्व-प्रमितिके—स्वत: व्यक्त तथा आनन्दमय के; परत्र—परे; अजात:—भौतिक शक्ति (प्रकृति); अतत्—अप्रासंगिक; निरसन-मुख—अप्रासंगिक के परित्याग द्वारा; ब्रह्मक—वेदान्त द्वारा; मितौ—ज्ञानवान; अनीशे—असमर्थ होने से; अपि—भी; द्रष्टुम्—देखने के लिए; किम्—क्या; इदम्—यह; इति—इस प्रकार; वा—अथवा; मुह्यति सति—मोहित होकर; चच्छाद—हटा दिया; अज:—भगवान् कृष्ण ने; ज्ञात्वा—जान कर; सपदि—तुरन्त; परम:—सर्वश्रेष्ठ; अजा-जवनिकाम्—माया का पर्दा।

परब्रह्म मानसिक तर्क के परे है। वह स्वत: व्यक्त, अपने ही आनन्द में स्थित तथा भौतिक शक्ति के परे है। वह वेदान्त के द्वारा अप्रासंगिक ज्ञान के निरसन करने पर जाना जाता है। इस तरह जिस भगवान् की महिमा विष्णु के सभी चतुर्भुज स्वरूपों की अभिव्यक्ति से प्रकट हुई थी उससे सरस्वती के प्रभु ब्रह्माजी मोहित थे। उन्होंने सोचा, ''यह क्या है?'' और उसके बाद वे देख भी नहीं पाये। तब भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्थिति समझते हुए तुरन्त ही अपनी योगमाया का परदा हटा दिया।

तात्पर्य : ब्रह्मा पूरी तरह मोहित थे। वे यह समझ नहीं पाये कि वे क्या देख रहे हैं और उसके बाद तो वे देख भी नहीं सके। तब भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्थिति समझ कर उस योगमाया के आवरण को हटा लिया। इस श्लोक में ब्रह्मा को *इरेश* कहा गया है। *इरा* का अर्थ है सरस्वती अर्थात् विद्या की देवी और इरेश हुए उनके पति ब्रह्मा। अत: ब्रह्मा अत्यन्त बुद्धिमान हैं। किन्तु सरस्वती-पति ब्रह्मा तक कृष्ण के विषय में मोहग्रस्त हो गये। प्रयास करने पर भी वे कृष्ण को नहीं समझ पाये। प्रारम्भ में बालक, बछड़े तथा स्वयं कृष्ण योगमाया द्वारा आच्छादित थे। इस योगमाया ने बछड़ों तथा बालकों की दूसरी जोड़ी प्रकट कर दी थी जो कृष्ण के अंश थे और इसके बाद उसने अनेक चतुर्भुज रूप दिखलाये। अब ब्रह्मा के मोह को देखते हुए भगवान् कृष्ण ने उस माया को अदृश्य कर दिया। हो सकता है कि कोई यह सोचे कि कृष्ण ने जिस माया को समेट लिया वह *महामाया* रही हो किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि वह *योगमाया* थी—वह शक्ति जिससे कृष्ण कभी प्रकट दिखते हैं और कभी नहीं। जो माया वास्तविकता को आवृत करके अवास्तविक वस्तुएँ दिखलाती है, वह महामाया होती है किन्तु जिस माया से परम सत्य कभी प्रकट दिखते हैं और कभी नहीं वह

योगमाया है। इसलिए इस श्लोक में *अजा* शब्द *योगमाया* का सूचक है।

कृष्ण की शक्ति—उनकी मायाशक्ति या स्वरूपशक्ति—एक है किन्तु विविध रूपों में प्रकट होती है। *परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते* (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८)। वैष्णवों तथा मायावादियों में अन्तर यही है कि मायावादी इस माया को एक बतलाते हैं जबकि वैष्णव इसकी विविधता को मान्यता प्रदान करते हैं। विविधता में एकता है। उदाहरणार्थ, एक वृक्ष में अनेक प्रकार की पत्तियाँ, फल तथा फूल लगते हैं। सृष्टि में नाना प्रकार के कार्यों को करने के लिए नाना प्रकार की शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। दूसरा उदाहरण लें। किसी मशीन के सारे अंग लोहे के हो सकते हैं किन्तु मशीन के अन्तर्गत विविध कार्य आते हैं। यद्यपि सारी मशीन लोहे की है किन्तु उसका एक अंग एक प्रकार से चलता है, तो दूसरे अंग दूसरी तरह से। जो मशीन की कार्य-प्रणाली को नहीं समझता वह तब भी कह सकता है कि यह तो लोहा ही है। लोहा होने के बावजूद भी मशीन में विभिन्न अंग होते हैं, जो भिन्न भिन्न ढंग से चल कर उस उद्देश्य को पूरा करते हैं जिसके लिए मशीन बनाई गई थी। एक पहिया इधर घूमता है, तो दूसरा पहिया दूसरी ओर किन्तु वे इस तरह चलते हैं कि मशीन का कार्य चलता रहता है। इसीलिए हम मशीन के विभिन्न अंगों को भिन्न-भिन्न नाम प्रदान करते हैं—यह पहिया है, यह पेंच है, यह धुरी है, यह स्नेहक है, आदि आदि। इसी तरह वेदों में बतलाया गया है—

परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

कृष्ण की शक्ति विविधरूपा है अतएव वही शक्ति विविध प्रकार से कार्य करती है। *विविधा* का अर्थ है ''विविधता।'' विविधता में एकता है। इस तरह योगमाया तथा महामाया एक ही शक्ति के विविध अंग हैं और ये शक्तियाँ अपने अपने विभिन्न ढंगों से कार्य करती हैं। संवित, सन्धिनी तथा आह्लादिनी शक्तियाँ—कृष्ण की अस्तित्व-शक्ति, उनकी ज्ञान-शक्ति तथा उनकी आनंद-शक्ति—योगमाया से पृथक् हैं। इनमें से हर एक व्यष्टि शक्ति है। आह्लादिनी शक्ति राधारानी है। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बतलाया है—*राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मात्* (*चैतन्य-चरितामृत आदि* १.५)। आह्लादिनी शक्ति राधारानी के रूप में प्रकट होती है किन्तु कृष्ण तथा राधारानी एक हैं यद्यपि इनमें से एक शक्तिमान है, तो दूसरी शक्ति है।

ब्रह्मा को कृष्ण के ऐश्वर्य के विषय में (*निजमहिमनि*) मोह था क्योंकि यह ऐश्वर्य *अतर्क्य* अर्थात् अचिन्त्य था। अपनी सीमित इन्द्रियों से कोई अतर्क्य के विषय में तर्क नहीं कर सकता है। इसीलिए वह *अचिन्त्य* भी कहलाता है अर्थात् जो हमारे विचारों तथा तर्कों द्वारा चिन्त्य नहीं है। अचिन्त्य सूचक है उसका जिसको हम सोच नहीं पाते अपितु जिसे स्वीकार करना पड़ता है। श्रील जीव गोस्वामी ने कहा है कि जब तक हम ब्रह्म को अचिन्त्य स्वीकार नहीं कर लेते तब तक ईश्वर की धारणा बन नहीं पाती। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। इसीलिए हम कहते हैं कि शास्त्र के वचनों को बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में मान लिया जाय क्योंकि वे अतर्क्य हैं। *अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्*—जो अचिन्त्य है उसे तर्क द्वारा नहीं जाना जा सकता। सामान्यतया लोग तर्क करते हैं किन्तु हमारी विधि तर्क करने की न होकर वैदिक ज्ञान को यथारूप में स्वीकार कर लेने की है। जब कृष्ण कहते हैं, ''यह परा तथा यह अपरा है'' तो हम उनके कहे हुए को मान लेते हैं। ऐसा नहीं है कि हम तर्क करें ''यह परा क्यों है और वह अपरा क्यों है ?'' जो तर्क करता है, उसके लिए ज्ञान नहीं है।

स्वीकार करने का यह पंथ *अवरोहपन्था* कहलाता है। *अवरोह* शब्द का सम्बन्ध *अवतार* शब्द से है, जिसका अर्थ है ''जो नीचे आता है।'' भौतिकतावादी तर्क के द्वारा अर्थात् *आरोहपन्था* द्वारा हर वस्तु को जानना चाहता है किन्तु दिव्य विषयों को इस तरह से नहीं जाना जा सकता। इसके लिए *अवरोहपन्था* का अनुसरण करना होता है। इसीलिए *परम्परा* पद्धति स्वीकार करनी चाहिए। सर्वश्रेष्ठ परम्परा वह है, जो कृष्ण से आगे की ओर चलती है (*एवं परम्पराप्राप्तम्*)। हमें चाहिए कि कृष्ण जो भी कहते हैं उसे स्वीकार करें (*इमं राजर्षयो विदुः*)। यही *अवरोहपन्था* है।

किन्तु ब्रह्मा ने *आरोहपन्था* ग्रहण किया। वे अपनी सीमित चिन्त्य शक्ति से कृष्ण की माया को समझना चाह रहे थे इसलिए वे स्वयं मोहित हो गये। हर व्यक्ति को अपने ज्ञान में आनन्द आता है। वह सोचता है, ''मैं कुछ जानता हूँ।'' लेकिन कृष्ण के सामने यह धारणा नहीं चल सकती क्योंकि कृष्ण को प्रकृति की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। मनुष्य को समर्पण करना ही होगा। इसका कोई विकल्प नहीं है। *न तांस्तर्केण योजयेत्।* यही समर्पण कृष्णवादियों तथा मायावादियों का अन्तर है।

अतत्-निरसन सूचक है अप्रासंगिक का निराकरण (*अतत्* का अर्थ है ''जो तथ्य नहीं है'')।

कभी कभी ब्रह्म को *अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्* कहा जाता है अर्थात् ''जो न दीर्घ है, न सूक्ष्म, न छोटा, न लम्बा'' (*बृहदारण्यक उपनिषद* ५.८.८)। *नेति नेति*—''यह नहीं है, वह नहीं है'' परन्तु वह है क्या? एक कलम का वर्णन करने में कोई कह सकता है कि ''यह यह नहीं है; यह वह नहीं है,'' पर इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि कलम है क्या। इसे ही निषेध द्वारा परिभाषा करना कहते हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण ने भी निषेधात्मक परिभाषाएँ देकर आत्मा की व्याख्या की है। *न जायते म्रियते वा*—यह न जन्म लेता है, न मरता है। इससे अधिक और कुछ नहीं समझा जा सकता। किन्तु यह है क्या? यह शाश्वत है। *अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे*—यह अजन्मा, शाश्वत, पुरातन, न मरने वाला तथा सनातन है। जब शरीर की हत्या कर दी जाती है, तो इसकी हत्या नहीं होती—(*भगवद्गीता* २.२०)। प्रारम्भ में आत्मा को समझ पाना कठिन है इसीलिए कृष्ण ने निषेधात्मक परिभाषाएँ दी हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

''आत्मा को न तो किसी हथियार से खण्ड खण्ड किया जा सकता है, न ही आग में जलाया जा सकता है, न पानी से भिगोया जा सकता है न हवा से सुखाया जा सकता है।'' (*भगवद्गीता* २.२३)। कृष्ण कहते हैं, ''इसे अग्नि से जलाया नहीं जा सकता।'' इसलिए यह कल्पना करनी होती है कि ऐसा क्या है, जो अग्नि से जलता नहीं। यह निषेधात्मक परिभाषा है।

ततोऽर्वाक्प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अर्वाक्—बाह्य; प्रतिलब्ध-अक्षः—चेतना जागृत होने पर; कः—ब्रह्मा; परेत-वत्—मृत व्यक्ति की तरह; उत्थितः—उठ खड़े हुए; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; उन्मील्य—खोल कर; वै—निस्सन्देह; दृष्टीः—अपनी आँखें; आचष्ट—देखा; इदम्—इस ब्रह्माण्ड को; सह-आत्मना—अपने सहित।

तब ब्रह्मा की बाह्य चेतना वापस लौटी और वे इस तरह उठ खड़े हुए मानो मृत व्यक्ति जीवित हो उठा हो। बड़ी मुश्किल से अपनी आँखें खोलते हुए उन्होंने अपने सहित ब्रह्माण्ड को देखा।

तात्पर्य : वास्तव में हम मरते नहीं। मृत्यु के समय हम कुछ समय तक निश्चल रहते हैं जैसे नींद

में हों। रात्रि में जब हम सोते हैं, तो हमारे सारे कार्य ठप्प हो जाते हैं किन्तु ज्योंही हम जग जाते हैं, तो हमारी स्मृति तत्क्षण लौट आती है और हम सोचने लगते हैं, ''अरे मैं कहो हूँ? मुझे क्या करना है?'' यह *सुप्तोत्थितन्याय* कहलाता है। मान लीजिये हम मर जाते हैं। ''मरने'' का अर्थ है कुछ काल तक निष्क्रिय रहना और फिर से अपने कार्य चालू कर देना। यह क्रम हमारे कर्म तथा स्वभाव के अनुसार जन्म-जन्मांतर तक चलता रहता है। यदि मनुष्य-जीवन में हम अपने कार्यकलाप आध्यात्मिक जीवन के कार्य से शुरू करें तो हम असली जीवन में लौट आते हैं और सिद्धि प्राप्त करते हैं। अन्यथा कर्म, स्वभाव, प्रकृति इत्यादि के अनुसार तरह-तरह के जीवन तथा कार्य चलते रहते हैं और उसी तरह हमारे जन्म तथा मृत्यु भी चलते हैं। भक्तिविनोद ठाकुर ने बतलाया है—*मायार वशे याच्छ भेसे, खाच्छ हाबुडुब भाइ*—प्यारे भाइयो! तुम माया की लहरों में क्यों बहे चले जा रहे हो? आध्यात्मिक पद को प्राप्त करने पर ही कार्य स्थायी हो सकते हैं। *कृतपुण्यपुञ्जा:*—अनेकानेक जीवन के पुण्यकर्मों के संचित होने पर ही यह अवस्था प्राप्त होती है। *जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते* (*चैतन्य-चरितामृत मध्य* ८.७०)। कृष्णभावनामृत आन्दोलन जन्म-मृत्यु के चक्र, *कोटिजन्म,* को रोकना चाहता है। एक जन्म में सब ठीक करके स्थायी जीवन बिताना यही कृष्णभावनामृत है।

सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरःस्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

सपदि—तुरन्त; एव—निस्सन्देह; अभितः—चारों ओर; पश्यन्—देखते हुए; दिशः—दिशाओं में; अपश्यत्—ब्रह्मा ने देखा; पुरः-स्थितम्—सामने स्थित; वृन्दावनम्—वृन्दावन; जन-आजीव्य-द्रुम-आकीर्णम्—वृक्षों से पूरित, जो निवासियों की जीविका के साधन थे; समा-प्रियम्—और जो सारी ऋतुओं में समान रूप से सुहावने थे।

तब सारी दिशाओं में देखने पर भगवान् ब्रह्मा ने तुरन्त अपने समक्ष वृन्दावन देखा जो उन वृक्षों से पूरित था, जो निवासियों की जीविका के साधन थे और सारी ऋतुओं में समान रूप से प्रिय लगने वाले थे।

तात्पर्य : *जनजीव्यद्रुमाकीर्णम्*—वृक्ष तथा वनस्पतियाँ अनिवार्य हैं और वे सभी ऋतुओं में सुख देने वाली होती हैं। वृन्दावन में ऐसी ही व्यवस्था है। ऐसा नहीं है कि वृक्ष एक ऋतु में सुहावने लगें और दूसरी ऋतु में न लगें, प्रत्युत वे समस्त ऋतु-परिवर्तनों में सुहावने लगने वाले हैं। वृक्ष तथा वनस्पति हर एक के लिए वास्तविक जीविका के साधन हो सकते हैं। *सर्वकामदुघामही* (*भागवत*

१.१०.४)। वृक्ष तथा वनस्पति जीवन के वास्तविक साधन प्रदान करते हैं, उद्योग नहीं।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; नैसर्ग—प्रकृति द्वारा; दुर्वैराः—वैर होने पर; सह आसन्—साथ साथ रहते हैं; नृ—मनुष्य; मृग-आदयः—तथा पशु; मित्राणि—मित्रगण; इव—सदृश; अजित—श्रीकृष्ण के; आवास—निवासस्थान; द्रुत—चले गये; रुट्—क्रोध; तर्षक-आदिकम्—प्यास इत्यादि।

वृन्दावन भगवान् का दिव्य धाम है जहाँ न भूख है, न क्रोध, न प्यास। यद्यपि मनुष्यों तथा हिंस्र पशुओं में स्वाभाविक वैर होता है किन्तु वे यहाँ दिव्य मैत्री-भाव से साथ साथ रहते हैं।

तात्पर्य : *वन* का अर्थ है जंगल। हम जंगल से डर कर वहाँ नहीं जाना चाहते किन्तु वृन्दावन के जंगली जीव देवताओं के ही समान हैं क्योंकि वे वैर नहीं रखते। इस भौतिक जगत में भी जंगल में पशु एकसाथ रहते हैं और जब वे पानी पीने जाते हैं, तो किसी पर आक्रमण नहीं करते। वैर उपजने का कारण इन्द्रियभोग है लेकिन वृन्दावन में इन्द्रियभोग है ही नहीं क्योंकि वहाँ तो कृष्ण की तुष्टि ही सबों का एकमात्र लक्ष्य रहता है। इस भौतिक जगत में भी वृन्दावन के पशु जंगल में रहने वाले साधुओं से वैर नहीं रखते। साधुगण गौवें पालते हैं और सिंहों को दूध पिलाते हैं और उन्हें कहते हैं कि यहाँ आओ और थोड़ा-सा दूध पी लो। इस तरह वृन्दावन में वैर तथा ईर्ष्या का नामोनिशान नहीं है। वृन्दावन तथा सामान्य जगत में यही अन्तर है। हम वन का नाम सुन कर डर जाते हैं किन्तु वृन्दावन में ऐसा भय नहीं है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण को प्रसन्न करके सुखी है। *कृष्णोत्कीर्तनगाननर्तनपरौ।* चाहे वह गोस्वामी हो, अथवा सिंह या कोई अन्य हिंस्र पशु—हर एक का कार्य एक ही है—कृष्ण को तुष्ट रखना। सिंह भी भक्त हैं। वृन्दावन की यह विशेषता है। वृन्दावन में हर व्यक्ति सुखी है। वहाँ बछड़ा सुखी है, बिल्ली तथा कुत्ता सुखी हैं और मनुष्य भी सुखी है। हर कोई अपनी अपनी क्षमता के अनुसार कृष्ण की सेवा करना चाहता है, अतः वैर का नामोनिशान नहीं रहता। कोई कभी कभी यह सोच सकता है कि वृन्दावन के बन्दर वैर रखते हैं क्योंकि वे भोजन छीन लेते हैं और उत्पात मचाते हैं किन्तु हम देखते हैं कि वहाँ बन्दरों को भी मक्खन खाने दिया जाता है जैसाकि श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं। कृष्ण ने यह स्वयं दिखला दिया है कि हर प्राणी को जीवित रहने का अधिकार है। यह वृन्दावन का जीवन है। भला मैं क्यों जीवित रहूँ और आप मरें? नहीं। यह तो भौतिक जीवन है। वृन्दावन के निवासी

सोचते हैं, ''कृष्ण ने जो कुछ दिया है उसे हम प्रसाद के रूप में बाँट कर खायें।'' यह मनोवृत्ति एकाएक नहीं उत्पन्न हो सकती, इसका विकास कृष्णभावनामृत के साथ साथ धीरे-धीरे होगा। *साधन* द्वारा इस पद तक पहुँचा जा सकता है।

इस भौतिक जगत में नि:शुल्क भोजन वितरण के लिए सारे विश्व से चन्दा एकत्र किया जा सकता है किन्तु जिनको यह भोजन दिया जाता है, हो सकता है वे इसे पसन्द न करें। किन्तु कृष्णभावनामृत के महत्त्व को क्रमश: पसन्द किया जायेगा। उदाहरणार्थ, डर्बन दक्षिण अफ्रीका में हरे कृष्ण आन्दोलन के मन्दिर के विषय में *डर्बन पोस्ट* समाचार-पत्र ने समाचार छापा है : ''यहाँ सारे भक्त भगवान् कृष्ण की सेवा में तत्पर हैं जिसके परिणाम सुस्पष्ट हैं—सुख, उत्तम स्वास्थ्य, मन:शान्ति तथा सभी सद्गुणों का विकास।'' वृन्दावन की प्रकृति ऐसी ही है। *हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा:*—कृष्णभावनामृत के बिना सुख असम्भव है। कोई भले ही संघर्ष करे किन्तु सुख नहीं पा सकता। अतएव हम कृष्णभावनामृत के माध्यम से मानव समाज को जीवन-सुख, उत्तम स्वास्थ्य, मन:शान्ति तथा समस्त सद्गुण प्रदान करने के लिए अवसर देने का प्रयास कर रहे हैं।

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं
ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्व-
देकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (वृन्दावन में); उद्वहत्—धारण करते हुए; पशुप-वंश-शिशुत्व-नाट्यम्—ग्वालों के परिवार में शिशु बनने की क्रीड़ा (कृष्ण का अन्य नाम गोपाल है अर्थात् वह जो गौवें पालता है); ब्रह्म—ब्रह्म; अद्वयम्—अद्वितीय; परम्—परम; अनन्तम्—असीम; अगाध-बोधम्—अपार ज्ञान से युक्त; वत्सान्—बछड़ों को; सखीन्—तथा उनके संगी बालकों को; इव पुरा—पहले की तरह; परित:—सर्वत्र; विचिन्वत्—खोजते हुए; एकम्—अकेले, अपने आप; स-पाणि-कवलम्—हाथ में भोजन का कौर लिये; परमेष्ठी—ब्रह्माजी ने; अचष्ट—देखा।

तब भगवान् ब्रह्मा ने उस ब्रह्म (परम सत्य) को जो अद्वय है, ज्ञान से पूर्ण है और असीम है ग्वालों के परिवार में बालक-वेश धारण करके पहले की ही तरह हाथ में भोजन का कौर लिए बछड़ों को तथा अपने ग्वालमित्रों को खोजते हुए एकान्त में खड़े देखा।

तात्पर्य : *अगाध-बोधम्* शब्द इस श्लोक में महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है ''असीम ज्ञान से युक्त।'' भगवान् का ज्ञान असीम है अतएव उसके छोर का उसी तरह कोई छू नहीं सकता जिस तरह

समुद्र को मापा नहीं जा सकता। समुद्र-जल के विस्तार के समक्ष हमारी बुद्धि का प्रसार कितना हो सकता है? अमरीका की यात्रा के दौरान मेरा जहाज कितना महत्त्वहीन लग रहा था। वह समुद्र में दियासलाई की डिब्बी जैसा लग रहा था। कृष्ण की बुद्धि समुद्र के समान है क्योंकि इसकी विशालता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अतएव यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि कृष्ण की शरण ग्रहण की जाय, कृष्ण को मापने का हम प्रयत्न न करें।

अद्वयम् शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है ''अद्वितीय।'' चूँकि ब्रह्मा कृष्ण की माया से आच्छादित थे अतएव वे अपने को सर्वोच्च मान रहे थे। भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, ''मैं इस जगत का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हूँ। मैं सब जानता हूँ।'' वह सोचता है, ''मैं भगवद्गीता क्यों पढ़ूँ? मुझे सब आता है। मेरी अपनी व्याख्या है।'' किन्तु ब्रह्मा यह जान गये कि परम पुरुष तो कृष्ण हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः।* इससे कृष्ण का अन्य नाम *परमेश्वर* भी है।

अब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण को वृन्दावन में ग्वालबाल के रूप में प्रकट होते देखा जहाँ वे अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं कर रहे थे अपितु अपने हाथ में भोजन लिए, अपने मित्रों, बछड़ों तथा गौवों के साथ इधर-उधर घूमने वाले अबोध बालक के रूप में खड़े थे। ब्रह्मा ने कृष्ण को चतुर्भुज ऐश्वर्यपूर्ण नारायण के रूप में नहीं अपितु अबोध बालक के रूप में देखा। फिर भी वे समझ गये कि यद्यपि कृष्ण अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं कर रहे थे किन्तु हैं, वे वही परम पुरुष। लोग सामान्यतया किसी को तब तक सम्मान नहीं देते जब तक वह कोई अद्भुत कार्य न कर दिखाये किन्तु यहाँ पर यद्यपि कृष्ण कोई अद्भुत कार्य नहीं दिखला रहे थे तब भी ब्रह्मा जान गये कि वे वही अद्भुत व्यक्ति, सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी होने पर भी एक अबोध बालक के रूप में उपस्थित हैं। अतः ब्रह्मा ने स्तुति की—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि*—हे आदि-पुरुष, आप सभी वस्तुओं के कारण हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यह उनकी अनुभूति थी। *तमहं भजामि।* यही इष्ट वस्तु है। *वेदेषु दुर्लभम्*—मात्र वैदिक ज्ञान द्वारा कृष्ण तक नहीं पहुँचा जा सकता। *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ*—किन्तु भक्त बन जाने पर मनुष्य उनका अनुभव कर सकता है। अतः ब्रह्माजी उनके भक्त बन गये। प्रारम्भ में उन्हें ब्रह्माण्ड का स्वामी होने का गर्व था किन्तु अब वे समझ चुके थे कि ब्रह्माण्ड के स्वामी तो ये (कृष्ण) हैं। मैं तो एक क्षुद्र प्रतिनिधि हूँ। *गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।*

कृष्ण नाटक के एक पात्र की तरह कार्य कर रहे थे। चूँकि ब्रह्मा को यह सोच कर कि उनके पास कुछ शक्ति है मिथ्या प्रतिष्ठा का भ्रम हो गया था अत: कृष्ण ने उन्हें उनकी असली स्थिति दिखला दी। ऐसी ही घटना तब घटी जब ब्रह्माजी कृष्ण से भेंट करने द्वारका गये। जब कृष्णजी के द्वारपाल ने सूचना दी कि ब्रह्माजी आये हैं, तो कृष्ण ने पूछा, ''कौन से ब्रह्मा? उनसे पूछो कौन से ब्रह्मा?'' द्वारपाल ने जाकर यही प्रश्न पूछा तो ब्रह्माजी चकित रह गये। उन्होंने सोचा, ''क्या मेरे अतिरिक्त भी कोई अन्य ब्रह्मा है?'' जब द्वारपाल ने जाकर सूचित किया कि ''चतुरानन ब्रह्मा आये हैं'' तो भगवान् कृष्ण ने कहा, ''अरे! चतुरानन! दूसरों को भी बुलाओ और चतुरानन को दिखाओ।'' यह है कृष्ण की स्थिति। कृष्ण के लिए चतुरानन ब्रह्मा महत्त्वहीन हैं, तो भला ''चार सिर वाले वैज्ञानिकों'' की क्या बिसात! भौतिकतावादी वैज्ञानिक सोचते हैं कि यह पृथ्वीलोक तो सारे ऐश्वर्य से पूर्ण है किन्तु अन्य लोक रिक्त हैं। चूँकि वे केवल सोचते हैं इसलिए उनका यह वैज्ञानिक निष्कर्ष निकलता है। किन्तु *भागवत* से हम जानते हैं कि सारा ब्रह्माण्ड जीवों से पूरित है। यह तो वैज्ञानिकों की मूर्खता है कि वे कुछ भी न जानते हुए अपने को वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा ज्ञानी मानते हुए लोगों को भ्रान्त करते हैं।

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपु: कनकदण्डमिवाभिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; त्वरेण—तेजी से; निज-धोरणत:—अपने वाहन हंस से; अवतीर्य—उतरे; पृथ्व्याम्—पृथ्वी पर; वपु:—उनका शरीर; कनक-दण्डम् इव—सोने की छड़ी जैसा; अभिपात्य—गिर पड़े; स्पृष्ट्वा—छूकर; चतु:-मुकुट-कोटि-भि:—अपने चारों मुकुटों के सिरों से; अङ्घ्रि-युग्मम्—दोनों चरणकमलों को; नत्वा—नमस्कार करके; मुत्-अश्रु-सु-जलै:—अपने प्रसन्नता के अश्रुओं के जल से; अकृत—सम्पन्न किया; अभिषेकम्—उनके चरणकमल पखारने का उत्सव।

यह देख कर ब्रह्मा तुरन्त अपने वाहन हंस से नीचे उतरे और भूमि पर सोने के दण्ड के समान गिर कर भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श अपने सिर में धारण किये हुए चारों मुकुटों के अग्रभागों (सरों) से किया। उन्होंने नमस्कार करने के बाद अपने हर्ष-अश्रुओं के जल से कृष्ण के चरणकमलों को नहला दिया।

तात्पर्य : ब्रह्माजी दण्ड के समान नतमस्तक हुए और चूँकि ब्रह्मा का रंग सुनहरा है, अत: वे कृष्ण के सामने सुनहरे दंड के समान प्रतीत हुए। जब कोई व्यक्ति अपने गुरुजन के समक्ष दण्ड के समान

गिरता है, तो उसका नमस्कार *दण्डवत्* (''दंड के समान'') कहलाता है। 'दण्ड' का अर्थ है 'दंड' और 'वत्' का अर्थ है 'के समान'। ऐसा नहीं है कि कोई केवल *दण्डवत्* कहे, अपितु उसे गिरना चाहिए। इस तरह ब्रह्मा ने दण्डवत् किया, कृष्ण के चरणकमलों को अपने मस्तकों से छुआ और प्रेमवश उनके क्रन्दन को कृष्ण के चरणकमलों का *अभिषेक* समझना चाहिए।

ब्रह्मा के समक्ष जो व्यक्ति बालक रूप में प्रकट हुआ था वह वास्तव में परम सत्य परब्रह्म था (*ब्रह्मेति परमात्येति भगवान् इति शब्द्यते*)। परमेश्वर *नराकृति* हैं अर्थात् वे मनुष्य जैसे लगते हैं। वे *चतुर्बाहु* नहीं हैं। नारायण चतुर्बाहु हैं किन्तु परम पुरुष नराकृति हैं। बाइबिल से भी इसकी पुष्टि होती है जहाँ कहा गया है कि मनुष्य को ईश्वर की मूर्ति सदृश बनाया गया।

ब्रह्मा ने देखा कि ग्वालबाल के वेश में कृष्ण परब्रह्म हैं, जो सर्वकारणों के कारण हैं किन्तु अब वे ही बालक रूप में अपने हाथ में भोजन का कौर लिए वृन्दावन में इधर-उधर टहल रहे हैं। आश्चर्यचकित ब्रह्माजी अपने वाहन हंस से उतर पड़े और भूमि पर गिर कर उन्हें नमस्कार किया। सामान्यतया देवता पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते किन्तु ब्रह्मा ने स्वेच्छा से देवता की प्रतिष्ठा त्याग कर कृष्ण के समक्ष पृथ्वी पर दण्डवत किया। यद्यपि ब्रह्मा का हर दिशा में एक सिर है, वे स्वेच्छा से अपने सभी सिरों को पृथ्वी पर लाए और उन्होंने कृष्ण के चरणों को अपने चारों मुकुटों के अग्रभागों से छुआ। यद्यपि उनकी बुद्धि सभी दिशाओं में कार्य करती है किन्तु उन्होंने बालक कृष्ण के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया।

उल्लेख हुआ है कि ब्रह्मा ने कृष्ण के चरणों को अपने अश्रुओं से प्रक्षालित किया। यहाँ पर *सुजलै* शब्द सूचित करता है कि उनके अश्रु शुद्ध थे। भक्ति के उदय होने पर प्रत्येक वस्तु शुद्ध बन जाती है (*सर्वोपाधि विनिर्मुक्तम्*)। इसलिए ब्रह्मा का क्रन्दन *भक्त्यनुभाव* अर्थात् दिव्य आह्लाद का एक रूप था।

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

उत्थाय उत्थाय—बारम्बार उठ कर; कृष्णस्य—कृष्ण के; चिरस्य—दीर्घकाल से; पादयोः—चरणकमलों पर; पतन्—गिर कर; आस्ते—पड़े रहे; महित्वम्—महानता; प्राक्-दृष्टम्—जिसे उन्होंने पहले देखा था; स्मृत्वा स्मृत्वा—स्मरण कर करके; पुनः पुनः—बारम्बार।

काफी देर तक भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर बारम्बार उठते हुए और फिर नमस्कार करते हुए ब्रह्मा ने भगवान् की उस महानता का पुनः पुनः स्मरण किया जिसे उन्होंने अभी अभी देखा था।

तात्पर्य : एक स्तुति में कहा गया है :

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे

भारतमन्ये भजन्तु भवभीतः।

अहमिह नन्दं वन्दे

यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

''भौतिक संसार से डर कर कोई भले ही वेदों, स्मृतियों तथा महाभारत का अध्ययन करे किन्तु मैं तो उन नन्द महाराज की पूजा करूँगा जिनके आँगन में परब्रह्म रेंग रहे हैं। नन्द महाराज इतने महान् हैं कि उनके आँगन में परब्रह्म रेंग रहे हैं अतएव मैं उनकी पूजा करूँगा।'' (*पद्यावली* १२६)।

ब्रह्मा हर्षातिरके से गिरे जा रहे थे। मनुष्य के बालक सदृश भगवान् की उपस्थिति के कारण ब्रह्माजी आश्चर्यचकित थे। अतएव यह समझते हुए कि यही परम पुरुष हैं उन्होंने रुद्ध कण्ठ से स्तुति की।

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने
मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः
सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४॥

शब्दार्थ

शनैः—धीरे-धीरे; अथ—तब; उत्थाय—उठ कर; विमृज्य—पोंछ कर; लोचने—अपनी दोनों आँखें; मुकुन्दम्—मुकुन्द या भगवान् कृष्ण को; उद्वीक्ष्य—ऊपर देखते हुए; विनम्र-कन्धरः—अपनी गर्दन झुकाये; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए; प्रश्रय-वान्—अत्यन्त विनीत; समाहितः—मन को एकाग्र किये; स-वेपथुः—काँपते हुए शरीर से; गद्गदया—अवरुद्ध; ऐलत—ब्रह्मा प्रशंसा करने लगे; ईलया—शब्दों से।

तब धीरे-धीरे उठते हुए और अपनी दोनों आँखें पोंछते हुए ब्रह्मा ने मुकुन्द की ओर देखा। फिर अपना सिर नीचे झुकाये, मन को एकाग्र किये तथा कंपित शरीर से वे लड़खड़ाती वाणी

से विनयपूर्वक भगवान् कृष्ण की प्रशंसा करने लगे।

तात्पर्य : प्रसन्नता के मारे ब्रह्मा अश्रुपात करने लगे और उन्होंने अपने आँसुओं से कृष्ण के चरणकमलों को धो दिया। वे कृष्ण की अद्भुत लीलाओं का स्मरण कर करके बारम्बार गिरने और उठने लगे। दीर्घकाल तक नमस्कार करते रहने के बाद ब्रह्माजी उठ खड़े हुए और अपने अश्रुओं को पोंछा। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि *लोचने* शब्द इंगित करता है कि उन्होंने दोनों हाथों से अपने चारों मुखों की दो-दो आँखों को पोंछा। अपने समक्ष भगवान् को देख कर ब्रह्माजी ने अत्यन्त विनय, आदर तथा मनोयोग से स्तुति करनी शुरू की।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत ''ब्रह्मा द्वारा बालकों तथा बछड़ों की चोरी'' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

PRELIMINARY PAGES
श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयत:
कृष्णद्वैपायन व्यास
कृत
श्रीमद्भागवतम्
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धय: ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत:
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्यदङ्घ्रय: ॥
(श्रीमद्भागवत १०.२.३२)
कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :
श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)
श्री चैतन्य-चरितामृत (१७ खण्ड)
भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण (३ खण्ड)
पूर्ण प्रश्न : पूर्ण उत्तर

द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद:पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षाएँ
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत जीवन
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
कृष्णभावनामृत की अनुपम भेंट
राजविद्या
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
पुनरागमन:पुनर्जन्म का विज्ञान
गीतार गान (बाँग्ला)
भगवद्दर्शन (मासिक पत्रिका) : संस्थापक
अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,
हरे कृष्ण धाम, जुहू, बम्बई-४०००४९
श्रीमद्भागवतम्
(भगवत्-सन्देश)
दशम स्कन्ध
''परम पुरुषार्थ''
(भाग एक—अध्याय १-१३)
मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,
अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
लॉस एंजिलिसलंदनस्टॉकहोमसिडनीबम्बई

इस ग्रंथ की विषयवस्तु के जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र के सचिव से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम,
जुहू, बम्बई-४०००४९